❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

# श्रीभागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ३ | गौराब्द ४७२, मास—मधुसूदन ६, वार—वासुदेव
रविवार, ३० चैत्र, सम्वत् २०१५, १३ अप्रैल १९५८ | संख्या ११

## श्रीश्रीरामचन्द्रस्तोत्रम्

देवा ऊचुः—

जय दाशरथे सुरार्त्तिहञ्जयताहानव—वंशदाहकः ।
जय देव वराङ्गनागण—व्यपकर्षादिकरारिदारकः ॥१६॥

तव यद्भुजेन्द्रनाशनं कथयस्तत् कथयन्तु चोत्सुकाः ।
प्रलये जगतां ततीः पुनर्ग्रससे स्वं भुवनेश लीलया ॥१७॥

जय जन्मजरादिदुःखकैः परिमुक्त प्रबलोद्धरोद्धर ।
जय धर्मकरान्वयाम्बुधौ कृतजन्मञ्जरामवाच्युत ॥१८॥

तव देववरस्य नामभिर्हुपापाश्च गताः पवित्रताम् ।
किमु साधुद्विजवर्यपूर्वकाः सुतनुं मानुषतामुपागताः ॥१९॥

हरविरिञ्चिनुतं तव पादयोर्युगलमीप्सित-कामसमृद्धिदम् ।
हृदि पवित्रयवादिक-चिह्नितैः सुरचितं मनसा स्पृहयाम् ते ॥६०॥

यदि भवान्न दधात्यभयं भुवो मदनमूर्त्ति-तिरस्करकान्तिभृत् ।
सुरगणाश्च कथं सुखिनः पुनर्ननु भवन्ति घृणामय पावन ॥६१॥

यदा यदास्मान् दनुजा हि दुःखदास्तदातदा त्वं भुवि जन्मभाग्भव ।
अजोऽव्ययोऽपि प्रवरोऽपि सन् विभो स्वभावमास्थाय निजं निजार्चितः ॥६२॥
मृत-सुधासदृशैरघनाशनैः सुचरितैरवकीर्य महीतलम् ।
अमनुजैर्गुणशंसिभिरीडितस्त्वमत आशु पुनः प्रविशेः पदम् ॥६३॥
अनादिराद्योऽजररूपधारी हारी किरीटी मकरध्वजाभः ।
जयं करोतु प्रसभं हतारिः स्मरारि-संसेवित-पादपद्मः ॥६४॥
भवत्कृतं मदीयैर्वै गुणैर्ग्रथितमद्भुतम् । स्तोत्रं पठिष्यति मुहुः प्रतिनिशि सकृन्नरः ॥७१॥
मदीयचरणद्वन्द्वे भक्तिस्तेषाञ्च भूयसी । भविष्यति मुदा युक्तं स्वान्तं पुंसां तु पाठतः ॥७२॥

—( पद्मपुराण )

अनुवाद—

(श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेकके पश्चात्) देवताओंने हाथ जोड़ कर उनका स्तव करना आरम्भ किया—'देवताओंका दुःख दूर करनेवाले हे दशरथनन्दन राम ! आपकी जय हो; हे राम ! आपने असुरकुलका विनाश किया है। आपने देव-रमणियोंपर अत्याचार करनेवाले अति दुष्ट तीनों लोकोंके शत्रु रावणका वध किया है । आपकी जय हो । कविजन आपकी इस दैत्य-राक्षसोंके वधकी कथाका प्रीतिपूर्वक वर्णन करें । हे भुवनेश्वर ! यह जगत् आपकी ही लीला है; इस लीलाके अन्तमें—प्रलयकालके उपस्थित होनेपर आप ही पुनः इस जगत्-समूहको ग्रास कर लिया करते हैं ॥५६-५७॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप जन्म और जरा आदि दुःखोंसे सर्वथा मुक्त हैं। आपकी जय हो। आपने अत्यन्त प्रचण्ड राक्षसोंका विनाश कर उनका उद्धार किया है। हे अजर, अमर, अच्युत ! आपने सूर्यवंश रूप समुद्रमें जन्म ग्रहण किया है। आपकी जय हो ॥५८॥

हे देवश्रेष्ठ ! आपका नाम उच्चारण कर अनेकानेक पापी तक पवित्र हो चुके हैं; अर्थात् उद्धार लाभ कर चुके हैं, फिर जिन्होंने सर्वदा पुण्य-साधक कर्मोंमें निरत रहने वाले साधु और ब्राह्मणरूप श्रेष्ठ मनुष्यका जन्म पाया है, उनकी तो बात ही क्या है ॥५९॥

हे रघुनाथ ! अभिलषित फलको देनेवाले, ब्रह्मा और शिव आदिके द्वारा नित्य वन्दित और पवित्र जौ आदि चिह्नोंसे युक्त आपके युगल चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण करनेकी तीव्र लालसा हो रही है ॥६०॥

हे भुवनमोहन ! हे सुन्दर विग्रहवाले ! यदि आप पृथ्वीको अभयदान न करें, तो हे दयामय पावन ! देववृन्द कैसे सुखी रह सकेंगे ? ॥६१॥

हे सर्वेश्वर ! हे विभो ! आप अजन्मा, अव्यय एवं अपने स्वभावमें नित्य अवस्थित होने पर भी जब दैत्यगण अतिशय उपद्रव करने लगेंगे, तब आप कृपा कर पृथ्वी पर जन्म लेंगे और उस रूपमें मृत व्यक्तियोंके लिये संजीवनी-सुधाकी तरह पापोंको ध्वंश करनेवाले अनेक गुणोंसे सुशोभित अलौकिक चरित्र द्वारा समग्र जगत्में पूजित होकर पुनः अपने वैकुण्ठ-धाममें प्रवेश करेंगे ॥६२-६३॥

हे रघुवर ! आप सबके आदि हैं। आपका आदि कोई नहीं है। आप अजर ( जरा-रहित ) रूपधारी है, आपका रूप कदर्पके समान है, जो हार-किरीट आदि आभूषणोंसे सुशोभित है । महादेव आपके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं। आपने निखिल शत्रुओंका संहार किया है, आपकी जय हो ॥६४॥

महायशस्वी रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र देवताओंके स्तवसे बड़े आनन्दित हुए और उनके प्रति कृपाकटाक्ष से बोले—देवताओं ! आप लोगोंने मेरे गुणोंसे युक्त जो मेरा स्तवन किया है, उसे जो मनुष्य प्रातःकालमें अथवा सन्ध्याकालमें केवल एक बार भी पाठ करेगा, उसका हृदय सर्वदा आनन्दसे युक्त होकर मेरे चरणकमलोंके प्रति एकन्तरूपसे आसक्त रहेगा ॥७१-७३॥

# पिता, आचार्य और गुरु

शिष्य—'पिता', 'आचार्य' और 'गुरु' शब्द से हमलोग क्या समझें?

## पिता

आचार्य—'जिनसे पांचभौतिक देह लाभ किया जाता है, जो पांचभौतिक-देहका पालन-पोषण करते हैं, रक्षा करते हैं तथा उसके कल्याणकी कामना करते हैं, वे पिता कहलाते हैं। नीति-शास्त्रके मर्मज्ञ चाणक्यने कहा है—

"अन्नदाता भयत्राता यस्य कन्या विवाहिता।
जनयिता चोपनेता पंचते पितरः स्मृताः॥"

अर्थात् अन्नदाता, भयको दूर करनेवाला, श्वशुर, जन्मदाता जनक और उपनयन संस्कार देने वाला—इन पांचोंको 'पिता' की संज्ञा दी गयी है। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें सात प्रकारके पिताका उल्लेख है—

"कन्यादातान्नदाता ज्ञानदाताऽभयप्रदः।
जन्मदो मंत्रदो ज्येष्ठभ्रात्रा च पितरः स्मृताः॥"

अर्थात् श्वशुर, भोजनदाता, शिक्षक, अभय देने वाला, जन्मदाता, मंत्रदाता और बड़ा भाई—वास्तवमें जो हमारा पालन करते हैं तथा जिनको हम अपना पालन करनेवाला मानकर वास करते हैं, पिता हैं।

गरुण-पुराणमें पितृ-स्तोत्रमें पितरोंके विचारमें देखा जाता है कि पितृगण इकतीस प्रकारसे समस्त जगत्में व्याप्त हैं।

## आचार्य कौन हैं?

जो गायत्री मंत्र (व्याहृति) का उपदेश करते हैं, मौञ्जी-बन्धन-संस्कार प्रदान करते हैं और वेदोंका अध्ययन कराते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं। भार्गवीय मनुसंहिताके द्वितीय अध्यायके ४० वे श्लोकमें कहा गया है—

"उपनियतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते॥"

अर्थात् जो शिष्यको वेदमाता गायत्रीका उपदेश कर कल्प—निगूढ़ तत्त्वोंके सहित वेदका अध्ययन कराते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

शिक्षाके अभावमें चित् जातीय जीव केवल स्थूल विषयोंमें अभिनिविष्ट होकर चेतनताका यथार्थ उपयोग न कर सकनेके कारण शोक समुद्रमें निमग्न होगा। इस शोक सागरसे उद्धार पानेके लिये वेदके पठन-पाठनकी व्यवस्था है। मनुष्य और मनुष्येतर जीवोंमें अंतर यह है कि मनुष्य परलोक-विषयका अनुशीलन कर सकता है, परन्तु मनुष्यसे इतर प्राणी चेतनताका वैसा सद् व्यवहार नहीं कर सकते। केवल आहार, निद्रा, भय और मैथुन रूप इन्द्रिय-सुखके लिये चेष्टा करना पाशव-चेष्टा है तथा ऐसे सुख-सम्बन्धी ज्ञान का नाम पाशव ज्ञान है। मनुष्य जिज्ञासु होकर जब तक आचार्यके निकट गमन नहीं करता, तब तक उसके ज्ञानके साथ उपरोक्त पाशव-ज्ञानका बहुत कुछ सौसादृश्य रहता है। शोक और क्रोध आदि विकारों के अधीन होने पर मनुष्य पशु के स्तरमें अवस्थित हो पड़ता है। पशु-स्तरको पार कर आगे बढ़नेके लिये आचार्यके निकट जाना आवश्यक है। जिन लोगोंमें आचार्यके निकट जानेकी रूचिका अभाव है, अथवा शूद्राभिमानके कारण वेद अध्ययनके लिये अयोग्य हैं वे चिरकाल ही अशिक्षित शूद्र हैं। शोक ही उनकी प्रधान वृत्ति होती है।

## पिताका आचार्यत्व

अधिकांश क्षेत्रोंमें पिता ही आचार्यका कार्य करते हैं। परन्तु यदि पिता असमर्थ हुए, तब दूसरे आचार्यके निकट भी वेदकी विभिन्न शाखाओंके अध्ययनकी विधि है। पिता या आचार्य उपनयनके पहले उचित संस्कारों द्वारा प्रापञ्चिक देहधारी जीवको पापोंसे मुक्त करते हैं। याज्ञवल्क्य ऋषिने कहा है—"एवमेनः शमं याति बीज-गर्भं समुद्भवम्" अर्थात् दस प्रकारके संस्कारोंसे शुक्र-शोणित द्वारा उत्पन्न देहका पाप रूप मल दूर हो जाता है।

बद्ध दशामें जीवात्माकी दो उपाधियाँ होती हैं। ये दोनों उपाधियाँ आत्मवस्तु नहीं होने पर भी आत्म-वृत्तिके साथ संश्लिष्ट होनेके योग्य होती हैं। स्थूल उपाधिका नाम बाहरी शरीर अर्थात् पांचभौतिक

शरीर है और दूसरी सूक्ष्म उपाधिका नाम मानस या लिंग शरीर है। जीवात्मा जड़ जगत्के साथ सम्बन्ध स्थापन कर अपनेको जड़ विषयोंका भोक्ता अभिमान करता है। किन्तु जड़ीय अभिमानसे मुक्त विशुद्ध जीवात्मा हरि-सेवामें अवस्थित होकर भगवान्का भोग्य है। अतः जिस समय अणुचित् जीव अपने विशुद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, उस समय वह भगवान्को भोक्ता और अपनेको भोग्य दर्शन करता है। उस समय उसको अज्ञान नहीं होता। केवल पांचभौतिक जड़पिण्डमें आत्मबुद्धि प्रबल रहने रहने से बद्धजीव पशुके समान अपनेको शोक-मग्न शूद्र अभिमान करता है। इसीलिये वह नाना प्रकार के पापोंमें प्रवृत्त होता है। ऐसे पापीको पापसे दूर रहनेमें बहुतही कष्ट प्रतीत होता है तथा इस प्रकार दुःख भोग करते-करते उत्तरोत्तर अधिकतर दुःखमें पतित होता है।

यदि पिता वेदज्ञ हुए तो पुत्रके कल्याणके लिये उसे दस संस्कार प्रदान करते हैं, जिससे वह पांच-भौतिक देहके अनिवार्य पापोंसे मुक्त हो सके। आचार्यकी दयासे बद्ध जीव बाह्य-ज्ञानसे उन्नत परोक्ष-ज्ञान प्राप्त करता है। बद्धजीवके स्थूल देहके जनक और रक्षकके रूपमें पिता-माता प्रत्यक्ष ज्ञानसे और सूक्ष्म देहके पालक और पालिकाके रूपमें आचार्य और वेदमाता परोक्ष-ज्ञान से संतानको संवर्द्धित होते देखना चाहते हैं।

आचार्यका उपदेश प्राप्त कर क्रमशः वेद शास्त्रों में पारदर्शिता लाभ कर जीव निर्भेद ब्रह्मके अनुसंधानमें प्रवृत्त होता है अथवा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर मायावादकी अकर्मण्यता उपलब्धि करता है। इसे जीवात्माकी अपरोक्षानुभूति कहा जाता है।

## श्रीगुरुतत्त्व

पूर्वोक्त स्थूल और सूक्ष्म उपाधियोंसे मुक्त होने पर जीवात्मा जिस समय पूर्ण-विलासमय भगवान्की सेवाको जीवात्माकी नित्यवृत्ति जान लेता है, उस समय वह किसी अभिज्ञ आचार्यके निकट गमन करता है, जो उसे प्रकृतिसे अतीत ज्ञान प्रदान करते हैं। ये अप्राकृत ज्ञान प्रदान करनेवाले भगवत्पर वस्तु ही "श्रीगुरुदेव" हैं। श्रीगुरुदेव नित्यवस्तु हैं, उनके सेवक जीवात्मा भी नित्य वस्तु हैं। गुरुदेवके उपास्य है---सच्चिदानन्द भगवान् और उनके सेवक शुद्ध जीवात्माके उपास्य है—भगवान् और श्रीगुरुदेव। गुरु-देव उपास्य वस्तु होनेपरभी उनकी लीला-विचित्रताका सेवकों ( जीवात्माओं ) के साथ साम्य है। अप्राकृत अलङ्कारिकोंका कहना है कि 'विषय जातीय सेव्यवस्तु चित् शक्तिमान भगवान् है और आश्रय जातीय शक्तिवर्ग ही विभिन्न रसोंमें विचित्र विग्रह-विशिष्ट 'सेवक भगवान्' हैं। जीवात्माकी शुद्ध और पूर्ण अनुभूतिमें श्रीगुरुतत्त्व आश्रय जातीय भगवतत्त्वसे अभिन्न-तत्त्व हैं।

## बद्धजीव के तीन जन्म

बद्धजीवके स्थूल देहके जनक, रक्षक और शुभ-चिन्तक—"पिता हैं। सूक्ष्म देहके जनक, पालक और कल्याणकामी—आचार्य होते है। एवं विशुद्ध तथा नित्य जीवात्माके प्रदीपक भगवद्भिन्न आश्रय और नित्यवृत्तिके नित्य-सहायक—"गुरुदेव" होते हैं। स्थूल शरीरका जन्म, सूक्ष्म शरीर का जन्म तथा विशुद्ध आत्माका प्रकाश—इन तीन प्रकारके जन्मोंमें बद्धजीवका अधिकार है। अतः जनक सूत्रमें हम पिता, आचार्य और श्रीगुरुदेव—इन तीनोंको देख पाते हैं। पितृत्वमें कर्मकाण्ड, आचार्यत्वमें ज्ञान-काण्ड और गुरुत्वमें भक्तिकाण्डका अनुष्ठान परि-लक्षित होता है। मनु ( २।१६० ) ने कहा है—

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुति-चोदनात्॥

अर्थात् श्रुतियोंमें ऐसा कहा गया है कि द्विजका माताके गर्भसे जन्म ही शौक्र जन्म है। यही पहला जन्म है। पीछे उपनयन होनेपर दूसरा जन्म होता है अनन्तर यज्ञदीक्षा प्राप्त करने पर उसका तीसरा जन्म होता है। इसलिए जन्म तीन प्रकारका होता है—शौक्र, सावित्र्य, और दैक्ष्य।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती।

# साधु-वृत्ति

( पूर्व प्रकाशित संख्या १०, पृष्ठ २२६ के आगे )

## गृहस्थजनोंका प्रकृत धर्म

गृहस्थोंका प्रकृत धर्म बतलाते हुए श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

प्रभु कहे,—'कृष्णसेवा', 'वैष्णव-सेवन ।'
'निरन्तर कर कृष्णनाम—संकीर्तन ॥'

( चै० च० म० १५।१०४ )

अर्थात् धर्म जीवनके साथ न्याय-संगत साधनों से आवश्यक अर्थ-संग्रह द्वारा देह-यात्राका निर्वाह करना तथा कुटुम्बिओंकी सहायतासे 'कृष्ण-सेवा', 'वैष्णव-सेवा' और 'निरन्तर नाम-संकीर्तन' करना ही गृहस्थोंका यथार्थ धर्म है। वैष्णव-सेवाके संबंध में जानने योग्य बात यह है कि—निष्कपट भक्त तीन प्रकारके होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। इन तीनों प्रकारके वैष्णवोंका सेवन ही वैष्णव-सेवा है। वैष्णवोंको निमंत्रण कर एकत्र करना उचित नहीं। जिस समय जो वैष्णव आ जावे, उनकी यथायोग्य श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिये। बहुत से वैष्णवोंको एकत्र करनेसे अपराध होनेकी ही संभावना अधिक रहती है—

बहुत संन्यासी यदि आइसे एक ठांई ।
सम्मान करिते नारि, अपराध पाई ॥

( चै० च० म० १५।१३७ )

दीन-दुःखी व्यक्तियोंके प्रति दया करना गृहस्थ वैष्णवका कर्त्तव्य है। वे लोग-किसी साधारण धर्म के उद्देश्यसे या क्रोधके आवेशमें आत्म-हत्याका प्रयास न करेंगे। क्योंकि आत्म-हत्या—तामस धर्म है और मनुष्यमें जबतक तामस धर्मकी प्रबलता रहती है तब तक वह भगवत् कृपाका अधिकारी नहीं होता।

कृष्ण-भजनमें भजनके तारतम्यके अनुसार छोटे बड़ेका विचार होता है, वर्ण और जाति आदि के अनुसार नहीं। संसार-धर्ममें वर्णके अनुसार क्रियाओंके अधिकारमें भेद है। परन्तु भगवद्-भजनके सम्बन्धमें इस प्रकारका कोई भेदभाव नहीं है।

नीच-जाति नहे कृष्ण भजने अयोग्य ।
सत्कुल-विप्र नहे भजनेर योग्य ॥
येई भजे, सेई बड़, अभक्त-हीन छार ।
कृष्ण भजने नाहि जाति कुलादि विचार ॥

( चै० च० अ० ४।६६-६७ )

गृहस्थ वैष्णवको ग्रासाच्छादनके लिये जो कुछ अनायास रूपमें मिले, उससे संतुष्ट रहना चाहिए।

गृहस्थ वैष्णव जन कृष्णको सर्वेश्वर जानकर अनन्य भजनमें तत्पर रहेंगे। साथ ही उनको स्मार्त आदि सम्प्रदायोंमें पूजे जाने वाले देवताओंकी अवज्ञा भी नहीं करनी चाहिये।

स्वार्थ त्याग करके भी परोपकार करना गृहस्थ का धर्म है।

गृहस्थ-वैष्णवको तुलसीकी श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिये। तुलसीको अपने निकट रखकर हरिनाम करना चाहिये।

भक्तियुक्त गृहस्थ धन्य हैं; दूसरी ओर भक्तिहीन गृहस्थ सोचनीय हैं। गृहस्थजन जब जो कुछ सांसारिक व्यवहार करेंगे, मुखसे कृष्णनाम उच्चारण करते हुए करेंगे। इस विषयमें कालीदास नामक महाजन का चरित्र आदर्श है—

महाभागवत तिहों सरल उदार ।
कृष्णनाम-संकेते चालाय व्यवहार ॥

कौतुकेते तेहों यदि पाशक खेलाय ।
'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' करि पाशक चालाय ॥

( चै० च० अ० १६।६७ )

किसी वैष्णवको अन्याय रूपसे उपार्जन या अपव्यय नहीं करना चाहिये। कर्मचारियोंको घूस नहीं लेना चाहिये।

गृहस्थजनोंको भक्तिमान और सच्चरित्र गुरु करना चाहिए।

उन्हें सर्वदा सावधान होकर कार्य करना चाहिये, जिससे कोई वैष्णवापराध न हो जाय। यदि भ्रम-वशात: किसी वैष्णवके प्रति अपराध हो भी जाय तो उन्हींके चरणोंमें गिर कर तुरंत क्षमा माँग लेनी चाहिए अथवा उस अपराधका भयङ्कर फल होता है।

गृहस्थजनोंके लिये भक्तजनोंकी सेवा करना प्रधान कर्म है। भक्तोंकी सेवासे भक्तिकी वृद्धि होती है—

भक्त पदधुलि आर भक्तपद-जल ।
भक्त-भुक्त-शेष—एई तीन साधनेर बल ॥

( चै० च० अ० १६।६० )

## सम्पूर्णरूपसे भक्त होनेके पहले गृहस्थका कर्त्तव्य

गृहस्थ-भक्त जितने दिनों तक पूर्ण भक्त नहीं हो पाते, एवं जब तक उनकी भोगकी कामनाएँ पूर्ण रूपसे नष्ट नहीं हो जातीं, तबतक उन्हें किस प्रकार से चलना चाहिए, इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णने कहा है—

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालु-र्दृढ निश्चयः ।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥

( श्रीमद्भा० ११।२०।२७।२८ )

गृहस्थ-व्यक्ति श्रद्धालु होनेपर कृष्णदीक्षा ग्रहण करेंगे—क्योंकि श्रद्धालु व्यक्ति ही भक्तके अधिकारी हैं। उनमें निम्नलिखित २७ गुण अवश्य ही होने चाहिए—

कृपालु, अकृत-द्रोह, सतसार, सम ।
निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिंचन ॥
सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैक-शरण ।
अकाम, निरीह, स्थिर, विजित-षड्गुण ॥
मितभुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी ।
गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्षमौनी ॥

( चै० च० म० २२।७६-७७ )

गृहस्थ वैष्णवोंको साधुसंग अवश्य करना चाहिए। क्योंकि कृष्णभक्ति साधु संगसे प्रकाशित और पुष्ट होती है।

यों तो साधन भक्तिके ६४ अंग है और इनका यथाशक्ति पालन करना चारिये, परन्तु नवधा और पञ्चधाभक्तिका विशेष यत्नके साथ पालन करना चाहिए। यथा—

साधु-संग नाम कीर्तन, भागवत-श्रवण ।
मथुरा वास, श्रीमुर्तिर श्रद्धाय सेवन ॥
सकल-साधन श्रेष्ठ एई पञ्च अङ्ग ।
कृष्ण-प्रेम जन्माय एई पाँचेर अल्प संग ॥

( चै० च० म० २२।१२५-१२६ )

क्रमशः वैध अवस्थाको संकुचित करते हुए रागानुगा भक्तिमें प्रवेश करना चाहिए। भगवत-राग पैदा होनेपर अनेक विधियाँ स्वयं दूर हो जाती हैं तथा ऐसी दशामें प्रायश्चित आदिकी आवश्य-कता नहीं होती। यों तो राग मार्गमें प्रविष्ट व्यक्तियों का पापकर्मोंकी ओर कभी मन ही नहीं जाता, तथापि अज्ञानतावश यदि कभी कोई पाप कर्म हठात् हो भी जाता है तो भगवान् कृपाकर उसे शुद्ध कर देते हैं।

गृहस्थ व्यक्ति भक्ति-सम्बन्धी ज्ञान और वैराग्य के अतिरिक्त अन्य ज्ञान और वैराग्यके लिये प्रयत्न न करेंगे।

ज्ञान-वैराग्य भक्तिर कभु नहे 'अङ्ग' ।
अहिंसा-यम नियमादि बुले कृष्ण भक्त संग ॥

गृहस्थ वैष्णव दस प्रकारके नामापराधोंको परित्याग कर श्रद्धापूर्वक निरन्तर कृष्णनाम करेंगे इससे कृष्ण-प्रेम लाभ होता है—

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति ।
'कृष्ण-प्रेम', कृष्ण दिते धरे महाशक्ति ॥
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम-संकीर्तन ।
निरपराधे 'नाम' लैले पाय प्रेम-धन ॥

( चै० च० म० ४।७० ११ )

गृहस्थ वैष्णव केवल धर्माचार के ऊपर निर्भर न कर शुद्ध भक्ति का पालन करेंगे। केवल दुग्ध पानकर पय-हारी और फल खाकर फलाहारी कहलाने से ही भक्ति प्राप्त नहीं होती, बल्कि शुद्ध भक्तिका आदरपूर्वक पालन करनेसे भक्ति देवीका प्राकट्य होता है।

उन्हें अपनेको ब्रह्म अथवा भगवान् नहीं अभिमान करना चाहिये, ऐसी भावना अपराधमयी होती है। जीव भगवान्‌का दास है, स्वयं भगवान नहीं है।

गृहस्थ वैष्णव महाप्रभु और महाप्रभुके गृहस्थ-भक्तोंका चरित्र अनुसरण करेंगे। कृष्ण प्रीतिके उद्देश्यसे जो कुछ भी किया जाय, उत्तम है तथा कृष्ण सुखके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी कामनाओं की पूर्तिके लिये जो कुछ भी किया जाय, उससे संसार बन्धन दृढ़ होता है। भक्तोंके लिये गृहस्थ रहना अथवा गृह-त्याग करना एक ही बात है। राय रामानन्द, पुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीवास पण्डित, शिवानन्दसेन, सत्यराज खान और अद्वैत प्रभु—सबने आदर्श गृहस्थ जीवनमें शुद्ध भक्ति पालन का मार्ग दिखलाया है। जीविका-निर्वाहका भेद ही गृहस्थ और गृहत्यागीका भेद है। यदि गृहस्थाश्रम भजनके अनुकूल है, तब गृह-त्याग करना उचित नहीं है। वैराग्यका अवलम्बन करते हुए गृहस्थ रहना ही कर्तव्य है। हाँ, यदि घर भगवद्‌भजनके प्रतिकूल हो, तो तब गृह-त्यागका अधिकार होता है। इस समय जो गृह आदिके प्रति वैराग्य उदित होता है वही भक्तिके अनुकूल सच्चा वैराग्य है। इसी विचारका अवलम्बन कर श्रीवास पण्डितने घर नहीं छोड़ा, इसी विचारसे ही स्वरूप दामोदरने संन्यास ग्रहण किया। समस्त भक्तोंके जीवनमें यही विचार देखा जाता है। इस विचारके द्वारा जिन लोगोंने गृहत्याग किया है, उनकी अत्यन्त शीघ्र ही साधन राज्यमें उन्नति हुई है।

( क्रमशः )

—ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

# शरणागति

जब लौं हरि की कृपा न होय ॥
तब लौं मनुआ भटकत डोलै, नौ-नौ आँसू रोय ।
सदा विकल भय उर मधि व्यापत चिन्ता रहत दुखोय ॥
साधु संगति सम्मत बुधजन की कहूँ न पावत सोय ।
काम क्रोध मद लोभहिं माँते फटकत गुन ना कोय ॥
हरि की गति कौं हरि ही जानै और न जानत कोय ।
जहि जानै जहि देहु जनाई जानै और न कोय ॥
'शचीदास' कुटिल मति मोरी कछू न भावै मोय ।
का जानै अंतहु गति होगी राखु सरन अब मोय ॥

—सुशीलचन्द्र त्रिपाठी एम०ए०, साहित्यरत्न

# चार्वाक मतका जन्म-रहस्य

एक समय देवासुर संग्राममें पराजित होनेपर असुरसमुदाय दैत्यगुरु शुक्राचार्यके शरणागत हुआ। शुक्राचार्यने उन्हें धैर्य दिया और स्वयं उनकी रक्षा तथा देवताओंकी पराजयके लिये किसी निर्जन स्थान में महादेवकी कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए। कुछ दिनोंके बाद आशुतोष महादेव उनकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हुए और उनसे तपस्याका कारण पूछा। शुक्राचार्यने कहा—'देव! देवताओंकी पराजय और दानवोंकी रक्षाके लिये आपसे एक ऐसे मन्त्रकी प्रार्थना करता हूँ, जिसे देवगुरु बृहस्पति तक न जानते हों।'

महादेवने कहा—'वत्स! तुम्हारी कामना अत्यन्त दुःसाध्य है। खैर, एक हजार वर्ष तक केवल कण-धूमका पान कर सिरके बल पैरोंको ऊपर उठा खड़ा होकर तपस्या करनेसे तुम मेरे निकट वैसा मन्त्र पा सकते हो।' ऐसा कह कर वे अन्तर्द्धान हो गये।

महादेवकी आज्ञानुसार शुक्राचार्य पुनः तप करने लगे। इधर बृहस्पतिके नेतृत्वमें देवताओंने दानवों पर प्रबल पराक्रमसे आक्रमण किया और उनका संहार करना आरम्भ किया। दानवगण बचनेका कोई दूसरा उपाय न देख कर शुक्राचार्यकी माता भृगुपत्नी के शरणागत हुए। भृगुपत्नीने असुरोंकी रक्षा करनेके लिये सारी देव-सेनाको माया-निद्राके प्रभावसे सुला दिया। देवताओंको इस प्रकार माया-निद्रा द्वारा अभिभूत हुआ देख कर भगवान् विष्णु वहाँ पर प्रकट हुए और देवराज इन्द्रको माया-निद्रासे जगाकर उनको अपने शरीरमें प्रवेश करनेके लिये आदेश दिया। भगवान्की आज्ञानुसार इन्द्र तत्क्षण भगवान् के शरीरमें प्रवेश कर गये।

ऐसा देख कर भृगुपत्नीको बड़ा ही क्रोध हुआ। उन्होंने इन्द्रके साथ-साथ भगवान् विष्णुको भी जला डालनेके लिये अपना तपोबल प्रकाश किया। इसी बीच भगवान् विष्णुने इन्द्रकी प्रार्थनासे सुदर्शन-चक्र द्वारा भृगुपत्नीका सिर काट डाला। परन्तु महर्षि भृगुने मन्त्र बलसे पत्नीका सिर उसके धड़से लगाकर पुनर्जीवित कर दिया।

भृगुपत्नीको इस प्रकार पुनर्जीवित होते देख कर देवराज बड़े भयभीत हुए। उन्होंने अपनी कन्या जयन्तीको बुला कर कहा-'बेटी! आजकल शुक्राचार्य मेरे विनाशके लिये घोर तप कर रहे हैं। तुम उनके पास जाकर उनकी मनोनुकूल सेवाओं द्वारा उन्हें संतुष्ट कर मोहित करो। तुम्हें कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए, मैंने तुम्हें शुक्र चार्यको दान कर दिया।'

पिताकी आज्ञासे जयन्ती शुक्राचार्यके पास पहुँची। वे उस समय सिरके बल खड़े होकर कणधूम का पान करते हुए कठोर तपस्यामें निमग्न थे। उन्हें उस अवस्थामें देखकर जयन्ती मधुर-मधुर वाणियोंसे युक्त विविध प्रकारकी उनकी सेवा करने लगी। दिन बितने लगे। एक हजार वर्ष समाप्त होने पर भगवान् शंभुने शुक्राचार्यकी कठोर तपस्यासे संतुष्ट होकर कर उन्हें देवताओंको पराजित करनेके लिये शक्ति तथा दूसरोंके द्वारा अवध्य होनेका वर दिया। महादेव के अन्तर्द्धान होने पर शुक्राचार्यने जयन्तीकी अभिलाषानुसार लोक-दृष्टिसे अदृश्य होकर उसके साथ किसी निर्जन स्थानमें एक सौ वर्षोंतक भोग-विलास किया।

इधर देवराज इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिके निकट शुक्राचार्यके अन्तर्द्धान होनेकी बात बतलाकर दानव-कुलको मोहित करनेके लिये अनुरोध किया। देवगुरु बृहस्पति इन्द्रकी प्रार्थनानुसार शुक्राचार्यका रूप धारण कर दानवोंके पास गये। बहुत दिनोंके बाद अपने गुरुदेवको लौटा हुआ देखकर दैत्यगण बड़े प्रसन्न

हुए। उन्होंने कपट-वेशधारी बृहस्पतिका खूब आदर सत्कार किया। बृहस्पतिने भी दानवोंको मोहित करने के लिये सौ वर्षों तक उनका पौरोहित्य किया।

सौ वर्ष व्यतीत होने पर देवगुरु बृहस्पति एक दिन दानवोंकी सभामें बैठे हुए उपदेश दे रहे थे। उसी समय हठात् शुक्राचार्य भी सभा-मण्डपमें उपस्थित हुए। सभा-मण्डपमें एक ही साथ दो शुक्राचार्य को देखकर दानवगण बड़े विस्मित हुए। वे यथार्थ रहस्य को न समझनेके कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। परस्पर काना-फूँसी होने लगी।

बृहस्पतिको दैत्योंके बीच अपना रूप धारण कर अपने आसन पर बैठे देख कर शुक्राचार्यको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बृहस्पतिसे कहा—'देवगुरो! तुम यहाँ पर किस लिये आये हो। इनलोगोंको अभी तक पता नहीं है कि तुम बृहस्पति हो और मेरा रूप धारण कर इन्हें लोगोंको मोहित कर रहे हो। परन्तु तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। तुम्हें तो मालूम है कि एक बार तुम्हारे पुत्र कचने संजीवनी विद्या सीखनेके लिये छल करके मेरा शिष्यत्व ग्रहण किया था। परन्तु दानवोंने उसे पहचान कर जानसे मार डाला था। अतः तुम्हारा ऐसा आचरण तुम्हारे लिये ही अनिष्ट-कर है।

शुक्राचार्यकी बात सुनकर बृहस्पति जोर-जोरसे हँसने लगे। इस पर दैत्याचार्य क्षुब्ध होकर दानवोंसे बोले—'असुरों! तुमलोगोंने भारी भूल की है। जिसे तुमलोग अबतक अपना गुरु समझ रहे हो, वह यथार्थ में देवगुरु बृहस्पति है। उसने मेरा रूप धारण करके तुम लोगोंको मोहित कर रखा है। मेरी अनुपस्थितिमें तुमलोगोंने उसे मेरे आसान पर क्यों बैठाया? मैं तुमलोगोंकी रक्षा और देवताओंकी पराजयके लिये महादेवकी तपस्या करने चला गया था। अब जब मैं उनसे अपना मनोवांछित वर प्राप्त कर यहाँ लौटा हूँ, तो बात कुछ और ही दीख पड़ रही है। तुमलोगों का निनाश करनेके लिये देवगुरु बृहस्पति मेरे आसन पर बैठा हुआ है। तुमलोग इसे शीघ्र ही बाँध लो और लवण-समुद्रमें फेंक दो।'

शुक्राचार्यकी बात पूरी होते-न-होते ही बृहस्पति ने दैत्यराजको सम्बोधन कर कहा—'राजन! मैं वही हूँ, जो मेरा रूप है। मैं पहले भी था, अब भी हूँ। परन्तु आगन्तुक व्यक्ति देवता है अथवा दानव या नर-मैं नहीं कह सकता। खैर, यह जो कोई भी क्यों न हो, छलसे तुम्हारा अनिष्ट करनेके लिये मेरा रूप धारण कर आया है—इसमें संदेह नहीं।'

ऐसा सुनकर सारे दैत्य एक साथ बोल उठे—'साधु! साधु!! हमारे जो गुरु पहले थे, वही अब भी हैं। इस आगन्तुक व्यक्तिसे हमारा कोई मतलब नहीं है। ये जहाँ से आये हैं, वहीं लौट जाँय।'

इतना सुनना था कि शुक्राचार्य क्रोधसे तमतमा उठे। वे दानवोंको यह अभिशाप देते हुए वहाँसे बड़े वेगसे तपोवनकी ओर लौट गये कि—रे मूर्खों! जैसे तुम लोगोंने मेरा परित्याग किया है, वैसे तुम लोगोंकी सुख-श्री भी तुम्हारा परित्याग करेगी एवं शीघ्र ही तुम लोगोंका नाश होगा।

इधर बृहस्पतिने और भी कुछ दिनों तक दानवों का नेतृत्व किया। एक दिन दैत्योंने बृहस्पतिसे कहा—'गुरो! आप सर्व समर्थ हैं। हमें कृपा कर ऐसा ज्ञान उपदेश कीजिये, जिससे हम लोग इस आसार संसार से अनायास ही मोक्ष प्राप्त कर सकें।' देवगुरुने उत्तर दिया—मेरी भी यही अभिलाषा है। तुम लोग पवित्र और एकाग्रचित्त होकर मेरे पास आवो, मैं तुम्हें मोक्षदायक ज्ञानका उपदेश करूँगा।'

दानवोंके उपस्थित होनेपर बृहस्पति उन्हें इस प्रकार उपदेश करने लगे—संसारमें ऋक्, साम और यजुर्वेद आदि ग्रन्थ प्राणीमात्रके लिये दुःखप्रद हैं। स्वार्थी व्यक्तियोंने ही यज्ञ और श्राद्ध आदि कर्मोंकी सृष्टि की हैं। वैष्णव धर्म या शैव-धर्मादि समस्त धर्म ही हिंसाप्राय हैं; अतः कुधर्म हैं। अर्द्धनारीश्वर रुद्र भूत-पिशाचोंसे घिरे रह कर तथा अस्थि-समूह और भस्म आदि अपवित्र वस्तुओंको धारण करके मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकते हैं? लोग उनका आदर्श अनु-सरण कर व्यर्थ ही कष्ट पाते हैं। विष्णुको भी मुक्त कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि वे सर्वदा हिंसा-

कार्यमें लिप्त रहते हैं। रजोगुणात्मक ब्रह्माकी तो बात ही न पूछो, वे सर्वदा सृष्टि-कार्यमें ही व्यस्त रहते हैं। अपनेको वैदिक माननेवाले देवर्षि आदि भी मांसाहारी होनेके कारण क्रूर और पापरत होते हैं। मद्य-पान करके देवगण और मांस-भोजन कर ब्राह्मण किस प्रकार स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं? वेदोंमें यज्ञ और श्राद्ध आदिका जैसा फल कहा गया है, वह सर्वथा असंभव है। यदि निर्दोष पशुओंकी बलि देकर उनके रुधिरसे पृथ्वीको सींचनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, तब नरक किसके लिये है? यदि एक व्यक्ति के भोजन करनेसे किसी दूसरे व्यक्तिकी तृप्ति संभव है, तो किसीके विदेश जाने पर उसके घर पर श्राद्ध करनेसे उसका पेट क्यों नहीं भर जाता? यदि ऐसा संभव होता, तो उसे घरसे खाद्य-पदार्थोंको अपने साथ ले जानेमें व्यर्थ ही कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं होती। आकाशमें विचरण करनेवाले विप्रगण मांस-भक्षण द्वारा पतित होते हैं। मैथुन द्वारा भी स्वर्ग-प्राप्ति कैसे संभव है? चन्द्र ने बृहस्पतिकी पत्नी तारका अपहरण करके उससे बुधका जन्म दिया और बृहस्पतिने उसी बुधको अपना पुत्र माना। इन्द्रने गौतम ऋषिकी पत्नी अहिल्याका सतित्व नष्ट किया। ये चन्द्र और इन्द्र स्वर्ग के प्रधान देवता हैं। अब तुम्हीं लोग सोचो कि यह धर्म कैसा है? जहाँ ऐसा धर्म वर्त्तमान है—वहाँ परमार्थकी संभावना कहाँ?'

गुरुदेवके परमार्थसे युक्त इन उपदेशोंको सुनकर असुर-समुदायको बड़ा ही कौतूहल हुआ। उन्होंने पुनः पूछा—'गुरो! हम लोग इस संसारसे सर्वथा विरक्त होकर मोक्षकी अभिलाषा रखते हैं। आप कृपा कर इस भवकूपसे हमारा उद्धार करें। हम आपके शरणागत हैं। हमें आप दीक्षा-मंत्र प्रदान करें और यह निर्देश दीजिये कि हम लोग किस देवता की उपासना करें। आप कृपया यह भी बतलाइये कि स्मरण, ध्यान, धारणा या उपवास आदि किस उपाय से हम भवसागरको पार कर सकते हैं। अब हम लोग संसारमें कुटुम्ब-भरण आदि कार्योंमें नितान्त विरक्ति अनुभव करते हैं।'

उनकी वैसी श्रद्धाको लक्ष्य कर बृहस्पति बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा—'इन श्रद्धालु व्यक्तिओंको वेद बहिर्भूत युक्तियोंके द्वारा किस प्रकार पथ भ्रष्ट करूँ! ऐसा करनेसे मुझे स्वयं नरक भोग करना पड़ेगा। और यह मतवाद भी तो नितांत हास्यास्पद है। मैं क्या करूँ?'—ऐसा सोचकर वे भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे। उसी समय भगवान् वहाँ आविर्भूत होकर महामोहको उत्पन्न कर बृहस्पतिसे बोले—'कोई चिन्ता न करो। यह महामोह स्वयं समस्त दैत्योंको वेद-बहिर्भूत मतवादमें मोहित करेगा।' ऐसा कह कर वे अन्तर्ध्यान हो गये।

तत्पश्चात् महामोह-दिगम्बर और श्वेताम्बर-दो रूपोंमें आविर्भूत होकर दानवोंको नाना प्रकारके वेद-बहिर्भूत उपदेशोंसे मोहित किया। वे दो प्रकारके मत क्रमशः लोकायत और आर्हतके नामसे जगतमें प्रचलित हैं। अगले अंकोंमें इन मतवादोंका विशेष विवेचन दिया जायगा।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव औती महाराज

---


## श्रीकेदार-बद्रीकी परिक्रमाका विराट आयोजन चल रहा है।

यात्री तैयार हो जाँय। विस्तृत विवरणके लिये श्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय को लिखें।

# कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और भक्तिकाण्डके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर

सेवामें,

सम्पादक जी,

पतित-पावन श्रीवैष्णव चरणोंमें असंख्य दण्डवतपूर्वक निवेदन है कि मुझ पतित पर कृपा कर नीचे लिखे संदेहों पर ध्यान देंगे तथा इनका यथार्थ उत्तर ( शास्त्र-युक्ति और प्रमाणके साथ ) प्रदान कर कृतार्थ करेंगे—

( १ ) कर्मकाण्ड क्या है ? ज्ञानकाण्ड क्या है ? और भक्तिकाण्ड क्या है ? इन तीनोंका परस्पर क्या मेल है और क्या भेद है ? इनमें से प्रत्येकका अलग-अलग क्या फल होता है ?

( २ ) स्मार्त नामक दलका क्या सिद्धान्त है ? स्मार्त ब्राह्मण तथा वैष्णवोंमें क्या अन्तर है ?

( ३ ) कर्मी, ज्ञानी और भक्तसे स्मार्त्तदलका क्या भेद है ?

श्रीगुरु-वैष्णव कृपाक्लेश प्रार्थी—
**परमेश्वर प्रसाद प्रबोध**

## उत्तर

कृष्ण प्रेमकी प्राप्ति ही जीवका परम प्रयोजन हैं। वेदादि समस्त शास्त्रोंका मूल तात्पर्य इसी मूल तात्पर्य का अनुसंधान प्रदान करना है। मायाबद्ध जीव जिस लम्बे साधन-पथको अतिक्रम कर कृष्ण प्रेमको प्राप्त करता है, उसे साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त किया गया है। इन विभागोंको कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासना या भक्ति-काण्ड कहा जाता है। वेद, उपनिषद् और स्मृति आदि शास्त्रोंमें इनका विस्तृत विवेचन है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥
निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्ति योगस्य सिद्धिदः॥
( श्रीमद्भा० ११।२०।६-८ )

अर्थात् मनुष्योंके कल्याणके लिये वेदादि शास्त्रोंमें अधिकार भेदसे तीन प्रकारके योगोंका उपदेश है—कर्म, ज्ञान और भक्ति। सकाम कर्म-फलमें आसक्त-व्यक्ति कर्मयोगके अधिकारी हैं। जो लोग कर्मको तथा कर्मफलको नश्वर और दुःखप्रद जानकर उनसे विरक्त हो गए हैं, उनका त्याग कर चुके हैं, वे ज्ञान योगके अधिकारी है। तथा जो न तो अत्यन्त आसक्त है और न तो अत्यन्त विरक्त है, जो प्रत्येक वस्तुको भगवत्सेवाका उपकरण जानते हैं, जिनकी भगवत्-कथाओंके श्रवण और कीर्तनमें रुचि उत्पन्न हो गयी है, वे भक्तिके अधिकारी हैं।

यों तो कर्म, ज्ञान, और भक्ति योगकी बाह्य क्रियाओंमें कुछ विशेष भेद नहीं है, परन्तु भेद उन क्रियाओंके उद्देश्यसे होता है। जैसा उद्देश्य होगा, फल भी वैसा ही होगा। जैसे—एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि व्रतपालन, भगवत्पूजन, संध्या-

आह्निक, जीविका निर्वाहके लिये संग्रह या उपार्जन आदि क्रियाएँ तीनोंमें हैं। परन्तु इन तीनों योगोंमें इन क्रियाओंके उद्देश्य भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। कर्मी इन्हें लौकिक अथवा पारलौकिक भोगके लिये करता है; ज्ञानी-मोक्षके लिये करता है तथा भक्त भगवत्प्रीतिके उद्देश्यसे करता है। लौकिक और पारलौकिक भोगकी कामनासे किये जानेवाले कर्मोंको कर्म कहते हैं। मोक्षके उद्देश्यसे किये जानेवाले कर्मोंको ज्ञान कहते हैं। तथा भगवत्प्रीतिके उद्देश्यसे किये जानेवाले कर्मोंको भक्ति कहते हैं। नीचे इनका पृथक्-पृथक् कुछ विवेचन किया जाता है।

## कर्मकाण्ड

वेदोंके अतिरिक्त मनु, भृगु, पराशर, याज्ञवल्क्य आदि प्राचीन ऋषियोंने साधारण लोगोंके कल्याण के लिये वर्णव्यवस्थाकी विधि, साधारण धर्म, आचार-व्यवस्था, शासन-नीति, सामाजिक आचार-व्यवहार आदिका विधान अपने-अपने विचारोंके अनुसार निर्दिष्ट किया है। उनके विधानोंके संग्रहको स्मृति या संहिता कहते हैं। जो लोग इन स्मृतियोंका अनुसरण करते हैं उन्हें स्मार्त्त कहते हैं। स्मार्त्त दो प्रकारके होते हैं—अर्थी (भोग और मोक्षकामी) और परमार्थी (भक्त) शास्त्रोंका तात्पर्य जीवको कर्मफलों और भोगोंमें आबद्ध करना नहीं है, बल्कि उन्हें आगे बढ़ाकर निष्काम कर्म, निर्मल ज्ञान और अन्तमें भगवद्भक्तिकी ओर अग्रसर करना है। भगवदर्पित कर्मोंसे चित्तशुद्धि, उससे निर्मल भगवत् ज्ञान और उससे परा-भक्तिका उदय होता है। ऐसी पराभक्ति ही कृष्ण-प्रेम रूप चरम प्रयोजनकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है। जो लोग इस रहस्यको न जानकर कर्मफलों अथवा लौकिक और पारलौकिक भोगोंमें आबद्ध रहते हैं, उन्हें कर्मी या कर्मकाण्डी कहते हैं। ऐसे कर्मके विवेचनको कर्मकाण्ड कहते हैं।

जिन कर्मोंका उद्देश्य निर्मल ज्ञान अथवा भक्ति नहीं होता, वे दुखजनक और बन्धनका कारण होते हैं। भगवान्‌ने गीतामें इसे स्पष्ट कर दिया है—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः ।
( गीता ३।९ )

अर्थात् कृष्णप्रीत्यर्थ निष्काम-कर्मको यज्ञ कहते हैं। इसी यज्ञके उद्देश्यसे कर्म किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकारके समस्त कर्म संसार-बन्धनके कारण हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी—

नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपादसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥
( श्रीमद्भा० ३।२३।५६ )

अर्थात्—जिस पुरुषके कर्म धर्म, अर्थ, काम—त्रैवर्गिकधर्मके उद्देश्यसे अनुष्ठित नहीं होते, जिनका वही धर्म निष्कामता प्राप्त कर कृष्णेतर विषयोंके प्रति वैराग्य उत्पन्न नहीं करता और जिनका वह वैराग्य भगवत्सेवामें पर्यवसित नहीं होता, वह जीवित रह कर भी मृतक के समान है—उसका जीवन धारण करना व्यर्थ है।

पुनः—( १।५।१२ ) में—

नैष्कर्म्यमप्युच्युतभाव वर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥

अर्थात् कर्मशून्य ब्रह्मज्ञान, जो उपाधि निवारक अर्थात् मुक्तिका कारण है तथा नैष्कर्म्य भगवद्-भक्तिसे रहित हो तो उनकी कोई शोभा नहीं है, फिर जो साधन और सिद्धि दोनों ही अवस्थाओं में दुःखरूप और अमङ्गलजनक है, वह काम्य कर्म और अकाम्यकर्म जो भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है, कैसे शोभा पा सकता है?

श्री चैतन्यचरितामृतमें और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है—

कर्मनिन्दा, कर्मत्याग, सर्वशास्त्रे कहे ।
कर्म हइते प्रेमभक्ति कृष्णे कभु नहे ॥
( मध्य ८।२६३ )

अस्तु, कर्मका आचरण तभी तक करना चहिए, जब तक कर्ममें रुचि है। किन्तु कर्म और उसके फलको दुःखमय और संसार-बंधनका कारण जानकर उसके प्रति वैराग्य उत्पन्न होने अथवा भगवत्कथाके श्रवण और कीर्तनमें श्रद्धा उत्पन्न होनेपर तत्क्षण कर्मका परित्याग कर देना चाहिए—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥
( श्रीमद्भा० ११।२०।९ )

प्रश्न हो सकता है, कर्मका त्याग कैसे हो ?— शरीर रहते-रहते कर्मका स्थूल परित्याग संभव नहीं है। जब तक शरीर है, तब तक शरीर-निर्वाहक कर्म तो करने ही पड़ेंगे। तब इसका उपाय यह है कि अपने में से कर्तापनका अहंकार दूर कर जो कुछ करे उसे भगवान्‌को अर्पण करता रहे। ऐसा करते-करते जो कुछ भी करे उसे भगवत्-प्रीतिके उद्देश्यसे करे। ऐसा करनेसे प्रत्येक कर्मका कर्मांश नष्ट होकर भक्ति के रूपमें पर्यवसान हो जायगा। गीताकी यही शिक्षा है—

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥
( गीता ९।२७ )

इसके पश्चात चरम शिक्षा यह है।

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।'
( गीता १८।६६ )

## ज्ञान काण्ड

साधारणतः ज्ञानको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्राकृत ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, और भगवत्तत्त्वज्ञान। प्राकृत ज्ञान अर्थात् भौतिक ज्ञान अनित्य, परिवर्त्तनशील और नश्वर होनेके कारण अज्ञानकी कोटिमें आ जाता है। भगवत् तत्त्व-ज्ञानको भक्ति ही कहते हैं। अतः बचा हुआ केवल ब्रह्मज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। वस्तुतः ब्रह्मज्ञान भगवत्-तत्त्व-ज्ञानका विकृत और आंशिक प्रतिफलन मात्र है। ब्रह्मज्ञानके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) ब्रह्मके अतिरिक्त पदार्थ नहीं हैं; जो कुछ प्रतीत होता है, वह व्यवहारिक अथवा मिथ्या है।

(२) जीव कोई द्वितीय पदार्थ नहीं है। अविद्या-ग्रस्त ब्रह्मको ही जीव कहते हैं अथवा जीव ब्रह्मका ही विकार या विवर्त्त है। जीव-अभिमान अर्थात् अविद्या दूर होने पर वही ब्रह्म है।

(३) जगत् मिथ्या है।

(४) ब्रह्म निर्गुण या निःशक्तिक है।

(५) मुक्ति ही चरम प्रयोजन है।

ब्रह्म-ज्ञानके साधकको ज्ञानी अथवा ज्ञानकाण्डी कहते हैं। भक्तिरहित ज्ञान नितान्त हेय होता है। ऐसे निर्विशेष ज्ञानका चरम लक्ष्य मुक्ति है। 'मुक्ति' शब्द अभाववाचक है। दुःखसे परित्राण अथवा बन्धनसे छुटकारेका नाम 'मुक्ति' है। परन्तु 'भक्ति' शब्द भाववाचक है। इससे भावपदार्थ भगवत् सेवानन्द-रसके आस्वादनका बोध होता है। जैसे रोगसे मुक्ति और स्वास्थ्यसुखलाभ दोनों पृथक बातें हैं। स्वास्थ्य-सुख ही काम्य है, स्वास्थ्य-सुखकी प्राप्तिमें रोगकी निवृत्ति अनुस्यूत है। उसी प्रकार भक्ति द्वारा जिस कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है, उसमें जड़-मुक्ति भी अनुस्यूत रहती है—

अग्रे हय मुक्ति तबे सर्व बन्ध नाश ।
तबे से हइते पारे श्रीकृष्णेर दास ॥
( चैतन्यचरितामृत )

भगवद् भक्तोंके चरणोंमें मुक्ति लोटती रहती है परन्तु भक्त उसकी तरफ आँख उठा करके भी नहीं देखता।

प्रत्येक शास्त्रोंमें भक्तिरहित निर्विशेष ज्ञानको अत्यन्त तुच्छ बतलाया गया है। श्रीमद्भागवत्का तो स्पष्ट ही कथन है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव वर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।

अर्थात् भगवद्भावरहित--ज्ञान उपाधि--निवारण होने पर भी उपेक्षणीय है।

दूसरी जगह ( १।५।१२ ) भी

श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध लब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

अर्थात, हे विभो ! चरम कल्याण-स्वरूप आपको प्राप्त करनेके लिये भक्ति ही एक मात्र उपाय है । आप की भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत-उद्गम है । भक्ति उत्पन्न होने पर ज्ञानका आनुसंगिक रूपमें स्वतः प्रादुर्भाव होता है । उसके लिये पृथक परिश्रम की अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं होती । परन्तु जो लोग भक्तिका परित्याग कर केवल ज्ञान प्राप्तिके लिये परिश्रम करते हैं—दुःख भोग करते हैं, उनको बस दुःख-ही-दुःख हाथ लगता है और कुछ नहीं—ठीक उसी प्रकार जैसे थोथी भूसी कूटनेवालोंको केवल परिश्रम ही सार होता है, चावल नहीं ।

अस्तु, 'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य' (भागवत १०।१४।३) श्लोक द्वारा ज्ञान रूप प्रयासको परित्याग करनेका उपदेश दिया गया है । किन्तु भगवद्भक्तिको लक्ष्य करने वाला तत्त्व-ज्ञान कदापि उपेक्षणीय नहीं है । क्योंकि भक्ति उद्देशक ज्ञान भक्तिका पोषक होता है । गीतामें ऐसे ज्ञानको परा भक्तिका प्रकाशक बतलाया गया है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
( गीता० १८।५४ )

अतः जीव-स्वरूप विरोधी निर्विशेष ज्ञान भगवद्भावरहित और भक्ति प्रतिकूल होनेके कारण सर्वथा उपेक्षणीय है-शास्त्रोंका यही अभिमत है ।

## भक्तिकाण्ड

श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति भवदाराधनविधि
यथा मातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी ।
पुराणाद्या ये वा सहजनिवहास्ते तदनुगा
अतः सत्यं ज्ञातं मुरहर ! भवानेव शरणम् ॥

—माता श्रुतिसे जिज्ञासा करने पर उन्होंने तुम्हारी आराधना करनेके लिये उपदेश दिया । माता श्रुतिने जो उपदेश दिये, बहिन स्मृतिने भी वही बतलाया । पुराण और इतिहास आदि भातृवर्ग भी उन्हींके अनुगामी हैं, अर्थात् उन्होंने भी तुम्हारी आराधनाकी ही बात बतलायी है । अतएव हे मुरारि ! एकमात्र तुम्हीं आश्रय हो, यह मैंने ठीक ठीक जान लिया है ।

तात्पर्य यह कि भगवान् श्रीकृष्ण ही परम उपास्य तत्त्व हैं और उन्हें प्राप्त होनेके लिये भक्ति ही एक मात्र अभिधेय है—यह वेद, उपनिषद्, पुराण और स्मृति आदि समस्त शास्त्रोंका ही अभिमत है । जिज्ञासा हो सकती है कि भक्ति किसे कहते हैं ? महर्षि शाण्डिल्यने 'परानुरक्तिरीश्वरे'—'ईश्वरके प्रति ऐकांतिक अनुराग' को भक्ति बतलाया है । शास्त्रोंमें भक्तिके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

(१) सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ॥ (क)
( नारद पंचरात्र )

(२) मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ (ख)
( श्रीमद्भा० ३।२९।११-१२ )

---

[क] ( अप्राकृत ) इन्द्रियोंके द्वारा ( अप्राकृत ) इन्द्रियाधिपति श्रीकृष्णकी सेवाका नाम ही भक्ति है । यह भक्ति स्थूल और सूक्ष्म दैहिक-मानसिक दोनों प्रकारके औपाधिक धर्मोंसे सर्वथा मुक्त, कृष्णार्थ अखिलचेष्टायुक्त तथा निर्मल अर्थात् ज्ञान और कर्म रूप मलोंसे रहित होती है ।

[ख] जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अबाधगतिसे समुद्रकी ओर बहता रहता है, उसी प्रकार तैलधारावत् अविच्छिन्न रूपसे मनका मुझ सर्वान्तर्यामीके प्रति होना तथा मुझ पुरुषोत्तममें कामनारहित और अनन्य प्रेमका होना-निर्गुण भक्ति योगका लक्षण कहा गया है ।

(३) अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥ (क)
( भक्तिरसामृतसिन्धु )

(४) अन्यवांछा अन्य पूजा दादि ज्ञान-कर्म ।
आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिये कृष्णानुशीलन ॥
एइ शुद्धभक्ति, इहा हैते प्रेमा हय ।
पांचरात्रे भागवते एइ लक्षण कय ॥
( श्री चैतन्यचरितामृत आदि ४ )

भगवद्भक्तिमें जीव मात्रका अधिकार है। भक्ति सर्वप्रथम जीव हृदयमें श्रद्धाके रूपमें अविर्भूत होती है और साधु-संगमें श्रवण-कीर्त्तनके प्रभावसे क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति भाव, और प्रेमका आकार धारण करती है। वही प्रेम पुनः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव तकका रूप धारण करती है। महाभावका प्राकट्य केवल श्रीमती राधारानीमें ही है। भक्तिकी सीमा गोपी-प्रेम है, जिसमें महाभाव-स्वरूपिणी श्रीमती राधिका चरम अवधि हैं।

भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—साधन, भाव और प्रेम। भक्ति जहाँ साधन है, वहाँ साध्य भी है। सिद्धावस्थामें साधनकालवाली भक्ति ही मार्जित होकर कृष्ण-प्रेमके रूपमें उदित होती है। यही कृष्ण-प्रेम जीवका नित्यसिद्ध भाव—स्वरूपगत धर्म है। अग्निमें दाहिका शक्ति और फूलोंमें सुगन्धके समान आत्मा के साथ कृष्ण-प्रेमका नित्य सम्बन्ध है। बद्धावस्थामें यही विकृत होकर जड़ानन्द, जड़मुक्तावस्थामें ब्रह्मानन्द के रूपमें प्रतिबिम्बित होता है। यह किसी भी अवस्थामें नष्ट नहीं होता, आवृत हो सकता है। जैसे धूल द्वारा दर्पण आच्छादित होनेपर दर्पणकी प्रतिबिम्ब-शक्ति नष्ट नहीं होती, धूल पोंछ देने पर ज्योंकात्यों हो जाता है। अतः साधनका तात्पर्य उन आच्छादनोंको दूर करना है, जो जीवात्माको आच्छादित किये हुए हैं। माया अर्थात् कृष्ण-विमुखता ही वह आच्छादन है। यह आच्छादन दूर होते ही कृष्ण-प्रेम प्रकाशित हो पड़ता है। कृष्ण-प्रेम ही चरम प्रयोजन है। इस प्रेमके अभावमें भगवत् साक्षात्कार का कोई मूल्य नहीं। भगवत्साक्षात्कार रावण और कंसने भी किये थे और गोपियोंने भी। रावण आदिका भगवत्साक्षात्कार प्रीतिके अभावमें भक्ति नहीं कहा जा सकता। किन्तु कृष्णके मथुरा या द्वारका चले जानेपर भी गोपियोंका प्रीतियुक्त विप्रलंभ भाव भक्तिका चरम निदर्शन है।

शास्त्रोंमें भक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाया गया है--

न साधयति मां योगो न सांख्य धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥
भक्त्याहमेकया ग्राह्य.....।
( श्रीमद्भा० ११।१४।२०-२१ )

'भक्तिर्हि स्वतः प्रबलत्वात् अन्य निरपेक्षा ।'

इसी प्रकार प्रत्येक शास्त्रमें भक्तिका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित है। शास्त्रोंके भक्ति विवेचन भागको भक्तिकाण्ड कहा जा सकता है। भक्तिके विचारोंके अनुसार उसके आचरणकारीको भक्त अथवा भक्तिकाण्डी कहा जाता है।

उपर्युक्त विवेचनका निष्कर्ष यह निकलता है कि—

( १ ) लौकिक अथवा परलौकिक सुख-भोगके उद्देश्यसे की जानेवाली क्रियाओंको कर्म कहते हैं। मनु, पराशर, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंने स्मृतियों और संहिताओंमें कर्मका जो विवेचन किया है, उसे कर्मकांड कहते हैं।

(२) स्मृतिमें निर्दिष्ट कर्मोंको भोगके उद्देश्यसे करने वालोंको स्मार्त कहते हैं।

(३) कर्म और कर्मफलको और दुःखप्रद जानकर कृष्ण-प्रेमसे अपरिचित जो लोग मुक्तिके लिये प्रयास करते हैं उन्हें ज्ञानी कहते है और उनकी क्रियाओंके विवेचनको ज्ञानकाण्ड कहते हैं।

[क] कृष्णसेवाके अतिरिक्त दूसरी कामनाओंसे रहित, कर्म, योग ज्ञानादिसे सर्वथा निर्मुक्त केवल कृष्णकी प्रीतिके लिये कृष्णका अनुशीलन ही उत्तमा भक्ति है।

(४) निखिल वासनाओंको त्यागपूर्वक कर्म और ज्ञानसे सम्पूर्ण निरपेक्ष कृष्ण-प्रीत्यर्थ कृष्ण-सेवा को भक्ति कहते हैं। शास्त्रोंके भक्ति-तत्त्व विवेचनको भक्ति-काण्ड और भक्ति-आचरणकारीको भक्त कहते हैं। भक्तोंको वैष्णव या भागवत भी कहा जाता है।

(५) कर्मका फल—भोग है, ज्ञानका—मोक्ष और भक्तिका—कृष्ण-प्रेम-आस्वादन।

भोग—नश्वर, दुःखप्रद और संसार बंधनका कारण है।

मोक्ष—जीव-स्वरूपका विरोधी, अभाव-वाचक अर्थात् आनन्दरहित शब्द मात्र है।

कृष्ण-प्रेम—जीवात्माका स्वरूपगत—स्वाभाविक धर्म है; जैसे पुष्पमें सुगन्ध, अग्निमें दाहकता।

(६) ब्रह्मणता किसीकी बपौती नहीं, गुण और कर्म से सिद्ध होती है। जो ब्रह्मण्य देवकी उपासना करते हैं—ब्रह्म-वस्तुको ज्ञात हैं, उन्हें ब्राह्मण कहते हैं। ऐसे ब्राह्मण और वैष्णव एक ही पर्यायभुक्त हैं। परंतु स्मार्त्त ब्राह्मण और वैष्णवमें आकाश-पातालका भेद है। उनकी क्रियाओंमें भी प्रचुर अन्तर लक्ष्य किया जाता है। स्मार्त्तोंकी क्रियाएँ भक्ति-रहित होती हैं; भोग ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। वैष्णवोंकी प्रत्येक क्रियाओंका उद्देश्य भगवत्प्रीति होता है। वैष्णवमें ब्रह्मणता अनुस्यूत होती है। अतः प्रत्येक वैष्णव ब्राह्मण है। भक्तिरहित ब्राह्मण शूद्रसे भी अधम है और शूद्रकुलमें उत्पन्न व्यक्ति भी भगवद्भक्ति से युक्त होनेपर ब्राह्मणकी अपेक्षा श्रेष्ठ, पूज्य और भगवान्का प्रिय होता है। भगवानका कथन है—

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

---

# जैव-धर्म

[ संख्या १० के पृष्ठ २४० से आगे ]

ब्रजनाथ—"रसो वै सः'—इस वेद-मन्त्रमें जिसे रसमूर्ति कहा गया है, वे कौन है ?'

बाबाजी—'गोपालतापनी ( पूर्व भाग; १२-१३ ) में कहा है—

'गोपवेशं ( अभ्राभं तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम् )
सरुपुण्डरीक-नयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं मौन-मुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥ (क)

ब्रजनाथ—अबमें समझ गया कि श्रीकृष्ण-स्वरूप ही चित्-जगत्के नित्य-सिद्ध-स्वरूप हैं; वे ही सर्व-शक्तिमान हैं; स्वयं रस-स्वरूप हैं तथा सम्पूर्ण रसके आश्रय-स्वरूप हैं। ब्रह्मज्ञान आदिके द्वारा उनको प्राप्त नहीं हुआ जा सकता; अष्टांग-योग द्वारा उनके आंशिक तत्त्व—परमात्माको प्राप्त हुआ जाता है। निर्विशेष ब्रह्म इन्हीं श्रीकृष्णकी अङ्ग-कान्ति मात्र हैं। नित्य चित्-सविशेषसे युक्त वे श्रीकृष्ण ही जगत्के परमाराध्य हैं। परन्तु उन्हें पानेके लिये कोई उपाय नहीं दीख पड़ता; क्योंकि वे चिन्तासे अतीत हैं। और चिन्ताके अतिरिक्त मनुष्यके पास और दूसरा

(क) ग्वालबाल सा उनका वेश है, ( नूतन जलधरके समान श्याम वर्ण है, किशोर अवस्था है तथा वे दिव्य कल्पवृक्षके नीचे विराजमान हैं ) विकसित श्वेतकमलके समान उनके नेत्र हैं, उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति नवीन मेघके समान श्याम है, वे विद्युतके सदृश तेजोमय पीताम्बर धारण किये हुए हैं, उनकी द्विभुज मूर्त्ति है, ज्ञानकी मुद्रामें स्थित हैं, गलेमें पैरों तक लम्बी वनमाला शोभा पा रही है, वे श्रीकृष्ण ही सबके ईश्वर है।

उपाय ही क्या है ? ब्राह्मण अथवा चाण्डाल-कोई भी हो, उसे चिंतनके सिवा और उपाय ही क्या हैं ? अतः उनकी कृपा लाभ करना बड़ा ही कठिन जान पड़ता है।'

बाबाजी—'कठोपनिषद् ( २२।१२ ) में कहा गया है—

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।' (क)

ब्रजनाथ—'उनको आत्मस्थ कर निरन्तर देख पानेसे शाश्वती शान्ति पाया जा सकती है; परन्तु उन्हें किस उपायसे देखा जाय—यही तो समझ में नहीं आता।'

बाबाजी—'कठोपनिषद् ( १।२।२३ ) में कहा गया है—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,
न मेधया, न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥' (ख)

श्रीमद्भागवत ( १०।१४।२९ ) में भी कहते हैं—

'तथापि ते देव पदाम्बुज-द्वय-
प्रसाद-लेशानुगृहीत एव ही ।
जनाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ (ग)

बेटा ! मेरे प्रभु बड़े दयालु है। उन समस्त आत्माओंके भी आत्मा श्रीकृष्णको अनेक शास्त्रोंको पढ़-सुन कर अथवा तर्क-वितर्क द्वारा नहीं पाया जा सकता। तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा अथवा अनेक गुरु करने से ही वे प्राप्त हो सकेंगे—ऐसा भी नहीं है। वे तो उसीको प्राप्त होते हैं, वे तो उसीके सामने अपना सच्चिदानन्द-घन-स्वरूप प्रकाश करते हैं, जो उनको ( श्रीकृष्णको ) 'मेरा श्रीकृष्ण'—ऐसा स्वीकार कर लेता है। इन विचारोंको तुम अभिधेय तत्त्वके विवेचनके समय सहज ही समझ सकोगे।'

ब्रजनाथ—क्या वेदमें कहीं कृष्णके धामोंका नाम लिखा है ?'

बाबाजी—'अनेक जगहोंमें उल्लेख हैं। कहीं 'परव्योम,' कहीं 'ब्रह्म-गोपालपुरी' और कहीं गोकुल आदि अनेक नाम वेदोंमें पाये जाते हैं। जैसे श्वेताश्वतर उपनिषद् ( ४।८ ) में—

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥' (घ)

---

(क) जो बुद्धिमान् व्यक्ति परमात्माको आत्मस्थ अर्थात् अपने अन्दर दर्शन करता है, वही नित्या और शाश्वती शान्तिको लाभ कर सकता है—दूसरे नहीं।

(ख) यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न अनेक शास्त्रोंके अध्ययनसे ही प्राप्त हो सकता है; परन्तु जिसको वे स्वयं कृपा कर स्वीकार कर लेते हैं, उसीके निकट अपना स्वरूप विशेषरूपसे प्रकट करते हैं।

(ग) हे देव ! जो पुरुष आपके युगल चरणकमलोंका तनिक सा भी कृपाप्रसाद प्राप्त कर लेता है—उससे अनुगृहीत हो जाता है—वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमाका तत्त्व जान सकता है। दूसरा कोई भी ज्ञान-वैराग्य आदि अपने साधनोंके द्वारा बहुत समय तक भी कितना भी अनुसंधान क्यों न करता रहे, वह आपकी महिमाका यथार्थ तत्त्व जान नहीं सकता।

[घ] ऋक् मन्त्रोंके प्रतिपाद्य जिस परव्योम-धाममें विराजमान अक्षर ब्रह्मको आश्रय कर समस्त देवता स्थित हैं, उस परम पुरुषको जो मनुष्य नहीं जानता, वह वेदोंद्वारा क्या प्रयोजन सिद्ध करेगा ? अर्थात् कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकेगा। परन्तु जो उस परमात्माको तत्त्वसे जान लेते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं।

मुण्डकोपनिषद् ( २।२।७ ) में—

'दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ।' (क)

पुरुषबोधिनी-श्रुतिमें—

'गोकुलाख्ये माथुरमण्डले द्वेपार्श्वे
चन्द्रावली राधिका च ।' (ख)

गोपालोपनिषदमें—

तासां मध्ये साक्षात् ब्रह्मगोपाल-पुरी हि ।' (ग)

ब्रजनाथ—'तांत्रिक ब्राह्मणगण शिव-शक्तिको दुर्गा क्यों कहते हैं ?'

बाबाजी—'माया शक्तिको ही शिव शक्ति कहते हैं। इस मायाके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। सत्त्वगुणसम्पन्न ब्राह्मण सत्त्वगुणकी अधिष्ठात्री मायाकी पूजा कुछ अधिक शुद्ध रूपमें करता है। रजोगुणसे युक्त ब्राह्मण रजगुणविशिष्ट मायाकी आराधना करता है और तमोगुणका आश्रय करने वाला ब्राह्मण अन्धकार—तमोगुणकी अधिष्ठात्री माया को ही विद्या मानकर पूजता है। वास्तवमें भगवान् की पराशक्तिकी छायारूप विकारका नाम ही 'मायाशक्ति' है—पृथक्रूपमें कोई स्वतंत्रशक्ति नहीं है। माया ही जीवोंके बन्धन और मोक्षका कारण है। कृष्णसे विमुख होनेपर माया जीवको संसार-बन्धनमें डालकर दण्ड देती है; और कृष्णके प्रति उन्मुख होनेपर वही माया सत्त्वगुणका प्रकाशकर जीवको कृष्ण-ज्ञान प्रदानकर उसे संसारसे मुक्तकर कृष्ण-प्रेमका अधिकारी बनाती है। इसलिये मायिक-गुणोंसे बँधे हुए जीव मायाका शुद्ध स्वरूप अर्थात् भगवान्की स्वरूप-शक्तिको देखनेमें असमर्थ होकर छायाशक्तिको ( मायाको ) ही आद्या शक्ति मानते हैं। माया-मोहित जीव किसी सौभाग्यसे ही सुकृतिके बलसे इन सच्चे सिद्धांतोंको हृदयङ्गम करनेमें समर्थ होता है। अन्यथा माया द्वारा मोहित होकर कुसिद्धान्तोंके चक्करमें पड़ कर यथार्थ ज्ञानसे वंचित रहता है।'

ब्रजनाथ—'गोकुल-उपासनामें दुर्गादेवीको पार्श्वोंमें गणनाकी गयी है। ये गोकुलवाली दुर्गा कौन हैं ?'

बाबाजी—'ये गोकुलकी दुर्गा ही योगमाया हैं। चित्शक्तिके विकारके बीज रूपमें उनकी स्थिति है। इसलिये जब वे चिद् धाममें वर्तमान होती हैं, तब वे अपनेको स्वरूप शक्तिसे-अभिन्न मानती हैं। उन्हीं योगमायाका विकार ही जड़माया है। जड़मायामें अवस्थित दुर्गा चित्जगतमें स्थित स्वरूप शक्तिगत दुर्गाकी सेविका हैं; स्वरूप-शक्तिगत दुर्गा कृष्णकी लीला-पोषणशक्ति हैं। उसी योगमाया द्वारा प्रदत्त पारकीय भावको अवलम्बनपूर्वक गोपियाँ नित्य: जगत्में श्रीकृष्णके रस-विलासकी पुष्टि करती हैं। रासलीलाके 'योगमायामुपाश्रितः' ( भा० १०।२९।१ ) (घ) वाक्यका तात्पर्य यह है कि स्वरूप शक्ति द्वारा चिद्विलासमें बहुतसे ऐसे कार्य होते हैं, जो अज्ञान जैसे प्रतीत होते हैं; किन्तु वास्तवमें वे कार्य अज्ञान नहीं हैं। महा रसकी पुष्टिके लिये योगमाया वैसे-वैसे अज्ञान जैसे प्रतीत होनेवाले कार्योंकी सृष्टि करती है। इस विषयका विस्तृत विवेचन आगे रस-विचारके प्रसङ्गमें किया जायगा।'

ब्रजनाथ—'धाम-तत्त्वके सम्बन्धमें एक बात जानना चाहता हूँ। वह यह कि वैष्णवजन नवद्वीपको 'श्रीधाम' क्यों कहते हैं ?'

बाबाजी—'श्रीनवद्वीप धाम और श्रीवृन्दावन धाम—दोनों अभिन्न तत्त्व हैं; उस नवद्वीप धाममें

[क] वे परमात्मा परव्योम रूप दिव्य ब्रह्मपुरमें नित्य विराजमान हैं।

[ख] 'गोकुल' नामक मथुरा-मण्डलमें भगवान्की एक ओर श्रीमती राधिका और दूसरी ओर चन्द्रावली विराजमान हैं।

[ग] अप्राकृत धाम-समूहके बीचमें साक्षात् ब्रह्म-गोपालपुरी विराजमान हैं।

[घ] अपनी योगमायाका आश्रय कर श्रीकृष्णने रासलीला करनेकी अभिलाषा की।

मायापुर सर्वोपरि तत्त्व है। व्रजमें जो स्थान गोकुल का है, श्रीनवद्वीपमें वही स्थान श्रीमायापुरका है। मायापुर—नवद्वीप धामका महायोग पीठ है। श्रीमद्-भागवत ( ७।६।३८ ) के 'छन्नः कली'—श्लोकके अनुसार कलिके पूर्ण अवतार जैसे प्रच्छन्न हैं, उसी प्रकार उनका धाम भी प्रच्छन्न धाम है। कलियुगमें नवद्वीपके समान कोई तीर्थ नहीं है। जो इस धामकी चिन्मयता उपलब्धि कर लेता है, वही व्यक्ति व्रज-रसका यथार्थ अधिकारी है। व्रज ही कहिए या नवद्वीप ही कहिए, बहिर्मुख दृष्टिसे दोनों ही प्रपञ्चमय दीखेंगे। सौभाग्यसे जिनके चिन्मय नेत्र खुल जाते हैं, केवल वे ही धामका यथार्थ दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं।'

व्रजनाथ—'इस नवद्वीप धामका स्वरूप जानना चाहता हूँ।'

बाबाजी—'गोलोक, वृन्दावन, और श्वेतद्वीप—ये तीनों परव्योमके अन्तःपुर हैं। गोलोकमें श्रीकृष्ण की स्वकीय लीला होती है। वृन्दावनमें पारकीय लीला और श्वेतद्वीपमें उसी लीलाकी परिशिष्ट-लीला होती है। इन तीनोंमें तत्त्वतः कुछ भेद नहीं है। नवद्वीप-वस्तुतः श्वेतद्वीप होकर भी वृन्दावनसे अभिन्न है। नवद्वीपवासी बड़े सौभाग्यवान हैं—वे गौराङ्गदेवके पार्षद हैं। अनेक पुण्य-पुंजके फलसे नवद्वीप वास प्राप्त होता है। वृन्दावनमें कोई रस अप्रकाशित था, वही अप्रकाशित रस नवद्वीप धाममें परिशिष्टरूप-में प्रकाशित है। उस रसका अधिकारी होने पर ही उसका अनुभव किया जा सकता है।'

व्रजनाथ—'श्रीनवद्वीप धामका आयतन क्या है?'

बाबाजी—'श्रीनवद्वीप धामकी परिधि सोलह कोस है। इसका आकार अष्टदल कमलकी तरह है। सीमन्त द्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, मोदद्रुम द्वीप और रुद्र द्वीप—ये आठ द्वीप आठ दल हैं; इन सबके मध्यमें स्थित अन्तर्द्वीप पुष्पकी कर्णिका है। इस अन्तर्द्वीपके बीचोबीचमें श्रीमायापुर स्थित है। नवद्वीप धाममें विशेषतः मायापुरमें भजन-साधन करनेसे अत्यन्त शीघ्र ही कृष्ण-प्रेमकी सिद्धि हो जाती है। मायापुरके मध्यभागमें महायोग पीठ रूप श्रीजगन्नाथ मिश्रका भवन ( मंदिर ) है। सौभाग्य-शाली जीव इसी योगपीठमें श्रीगौराङ्गदेवकी नित्य लीलाका नित्य 'दर्शन करते हैं।'

व्रजनाथ—'क्या गौरलीला स्वरूप-शक्तिका कार्य है?'

बाबाजी—'श्रीकृष्ण लीला जिस शक्तिकी क्रिया है, गौरलीला भी उसी शक्तिकी क्रिया है। श्रीकृष्ण और गौराङ्गदेवमें कुछ भी भेद नहीं है। श्रीस्वरूप गोस्वामी कहते हैं—

राधा-कृष्ण-प्रणय-विकृति-र्ह्लादिनी-शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देह-भेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधा भाव द्युति-सुवलितं नौमि कृष्ण-स्वरूपम्॥ (क)

बाबा! कृष्ण और चैतन्य—ये दोनों नित्यप्रकाश हैं। इनमें कौन आगे है और कौन पीछे, कहा नहीं जा सकता। पहले चैतन्य थे। पीछेसे राधाकृष्ण हुए हैं; फिर दोनों एकत्र होकर अब चैतन्यदेवके रूपमें प्रकटित हैं—इस कथनका तात्पर्य यह है कि इनमेंसे एक आगे था और दूसरा पीछे हुआ है—ऐसी बात नहीं है—दोनों प्रकाश ही नित्य हैं, सब समय हैं और सब समय रहेंगे। परमतत्त्वकी समस्त लीलाएँ नित्य होती हैं। जो इन दोनों लीलाओंमें से किसी एकको गौण और दूसरीको मुख्य मानते हैं, वे नितांत अतत्त्वज्ञ और नीरस है।'

व्रजनाथ—'यदि श्रीगौराङ्गदेव साक्षात् परिपूर्ण तत्त्व हैं तो उनकी पूजाकी विधि क्या है?!'

(क) राधाकृष्णकी प्रणय-विकृतिरूप ह्लादिनी शक्तिके द्वारा राधाकृष्ण स्वरूपतः एकात्मा होकर भी विलास-तत्त्वकी नित्यताके कारण राधा और कृष्ण—दो रूपोंमें नित्य विराजमान हैं। वे दोनों तत्त्व अब इस समय एक स्वरूपमें अर्थात् चैतन्य तत्त्वके रूपमें प्रकटित हैं अतएव श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिसे युक्त इस कृष्ण-स्वरूप-को प्रणाम करता हूँ।

बाबाजी—'गौर-नाम-मंत्र' द्वारा गौरकी पूजा करनेसे वही फल होता है, जो फल 'कृष्ण-नाम-मंत्र' द्वारा कृष्णकी पूजा करनेसे होता है। कृष्ण-मंत्र द्वारा गौर-पूजा अथवा गौर-मंत्र द्वारा कृष्ण-पूजा—एकही बात है। जो लोग गौर और कृष्णमें भेद मानते हैं, वे नितांत मूर्ख और कलिके दास हैं।'

ब्रजनाथ—'छन्नावतारका मंत्र कहाँ पाया जा सकता है?'

बाबाजी—'जिन तंत्रोंने प्रकाश्य अवतारोंके मंत्र लिखें हैं, उन्हीं तंत्रोंने छन्नावतारका भी मंत्र छन्नरूपमें लिख रखा है। जिनकी बुद्धि कुटिल नहीं है, वे उसे समझ सकते हैं।'

ब्रजनाथ—'गौराङ्गका युगल किस प्रणालीसे होता है?'

बाबाजी—'गौराङ्गका युगल दो प्रकारसे बनता है। अर्चन-मार्गमें एक प्रकारसे और भजन-मार्गमें दूसरे प्रकारसे। अर्चन-मार्गमें श्रीगौर-विष्णुप्रिया की पूजा होती है और भजन मार्गमें श्रीगौर-गदाधर की सेवा होती है।'

ब्रजनाथ—'श्रीविष्णुप्रिया श्रीगौराङ्गकी कौन शक्ति हैं?'

बाबाजी—'साधारणतः भक्त लोग उन्हें भू-शक्ति कहते हैं; वास्तवमें वे ह्लादिनीकी सार-समवेत सम्वित् शक्ति हैं अर्थात् भक्ति-स्वरूपिणी हैं—जो गौरावतार में 'श्रीनाम' प्रचार रूप कार्यके सहायक रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। नवद्वीप धाम जैसे नवधा-भक्ति का स्वरूप हैं, उसी प्रकार विष्णु-प्रिया भी नवधा भक्तिके स्वरूप हैं।'

ब्रजनाथ—'तो क्या विष्णुप्रिया देवीको स्वरूप-शक्ति कहा जा सकता है?

बाबाजी—'इसमें क्या संदेह है? स्वरूप-शक्ति की ह्लादिनी-सार-समवेत सम्वित् शक्ति क्या स्वरूप-शक्ति नहीं हैं?'

ब्रजनाथ—'प्रभो! मैं जल्दी ही गौर-अर्चन सीखूँगा। अभी मुझे एक बात और स्मरण हो आयी है, कृपा कर उसे अच्छी तरह से समझा दें। आपने बतलाया है कि चित् शक्ति, जीव शक्ति और माया शक्ति—ये तीनों स्वरूप शक्तिके प्रभाव हैं; ह्लादिनी, सम्बित और सन्धिनी—ये तीनों स्वरूप शक्ति की तीन वृतियाँ हैं; तथा उपरोक्त तीनों प्रभावोंके ऊपर ह्लादिनी, सम्बित और सन्धिनी—इन तीन वृतियोंका जो कुछ कार्य अनुभव किया जाता है—वह सब शक्तिका ही कार्य है। इसके अतिरिक्त चित्-जगत्, चित्-शरीर और चित्-लीला—यह सब कुछ शक्तिका ही परिचय है। तब शक्तिमान श्रीकृष्ण का परिचय कहाँ है?'

बाबाजी—'यह तो बड़ी कठिन समस्या है। क्या अपने तर्कके तीक्ष्ण बाणों से इस वृद्धका वध करोगे? बेटा! प्रश्न जैसा सरल है, इसका उत्तर भी वैसा ही सरल है। परन्तु कठिन है, इसके उत्तरको समझने वाले अधिकारीका मिलना। मैं बतला रहा हूँ, तुम समझ लो। कृष्णका नाम, रूप, गुण और लीला—यह सब कुछ शक्तिका ही परिचय है, मानता हूँ; परन्तु 'स्वतन्त्रता' और 'स्वेच्छामयता' तो शक्तिके कार्य नहीं हैं। ये दोनों परम पुरुषके स्वरूपगत कार्य हैं। कृष्ण इच्छामय तथा शक्तिके आश्रय रूप परम पुरुष हैं। शक्ति भोग्या है, कृष्ण भोक्ता हैं। शक्ति अधीन होती है, कृष्ण स्वाधीन हैं; शक्तिने स्वाधीन पुरुषको सब तरह से घेर रखा है, तथापि स्वाधीन पुरुष सर्वदा पूर्णरूपसे अनुभूत हैं—स्वाधीन पुरुष शक्ति द्वारा आच्छादित रहने पर भी शक्तिके अध्यक्ष हैं। मनुष्य शक्तिके आश्रयसे उस पुरुषका अनुभव कर सकता है। अतएव बद्धजीव शक्तिके परिचयके अतिरिक्त शक्तिमानके परिचयका अनुभव नहीं कर पाता। परन्तु जब भक्तजन उस शक्तिमान से प्रेम करते हैं, तब वे शक्तिसे अतीत शक्तिमान नेता (पुरुष) का साक्षात्कार करते हैं। भक्ति—शक्तिमयी होती है, अतएव वे स्त्री स्वरूपा हैं। इसी लिये वे श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्तिके अनुगत होकर इच्छामय कृष्णके पुरुषत्व परिचायक पौरुष विलास का अनुभव करते हैं।'

ब्रजनाथ—'यदि शक्तिसे परे कोई परिचयरहित

तत्त्व स्वीकार किया जाता है, तो वह तत्त्व उपनिषद् का 'ब्रह्म' हो पड़ता है।'

बाबाजी—'उपनिषद्का ब्रह्म इच्छा-रहित होता है; किन्तु उपनिषद्-पुरुष कृष्ण स्वेच्छामय हैं। दोनों-में बहुत अन्तर है। ब्रह्म निर्विशेष होता है और कृष्ण शक्तिसे प्रथक् होकर भी सविशेष हैं; क्योंकि कृष्णमें पुरुषत्व, भोक्तृत्व, अधिकार और स्वतन्त्रता है। वस्तुतः कृष्ण और कृष्णशक्ति अभिन्न हैं। यह शक्ति भी जो कृष्णका परिचय देती है, साक्षात् कृष्ण ही है, क्योंकि कृष्ण-कामिनी शक्ति श्रीराधाके रूपमें अपना परिचय स्त्रीके रूपमें दिया करती है। कृष्ण सेव्य हैं, परमाशक्ति श्रीमतीजी उनकी सेवादासी हैं। अपना-अपना अभिमान ही परस्परका भेद-तत्त्व है।'

ब्रजनाथ—'कृष्णकी इच्छा और भोक्तृत्व यदि पुरुष रूपी कृष्णका ही परिचय है, तब श्रीमतीकी इच्छा क्या है?'

बाबाजी—'श्रीमतीकी इच्छा कृष्णकी इच्छाके अधीन होती है—कृष्णकी इच्छासे स्वाधीन उनकी कोई भी इच्छा अथवा चेष्टा नहीं होती। इच्छा—कृष्णकी ही होती है; उस इच्छाके अधीन कृष्ण-सेवा-की इच्छा ही श्रीमती राधिकाकी इच्छा है। श्रीमती राधिका—पूर्णशक्ति या आद्या शक्ति हैं। कृष्ण—पुरुष अर्थात् शक्तिके अधीश्वर और प्रवर्त्तक हैं।'

इस कथोपकथनके उपरान्त अधिक रात हुई देख कर बाबाजीने ब्रजनाथको घर जानेकी आज्ञा दी। ब्रजनाथ बाबाजी महाराजको दण्डवत्-प्रणाम कर आनन्दसे गद्गद् होकर विल्व-पुष्करिणीकी ओर चल पड़े।

ब्रजनाथके भाव दिन-दिन बदलते जा रहे हैं। इससे घरवालोंको बड़ी चिन्ता हुई। उनकी पितामही ने जल्दीसे जल्दी उनका विवाह दे देनेका निश्चय कर लिया। योग्यपात्रीका अनुसंधान कार्य आरम्भ हो गया, परन्तु ब्रजनाथ इन बातोंसे सर्वथा उदासीन रहते है। विवाह-सम्बन्धी बातों पर तनिक भी कान नहीं देते। दिन-रात बाबाजी महाराजसे श्रवण किये हुए तत्त्वोंके चिन्तनमें डूबे रहते हैं। सुने हुए तत्त्वों-को हृदयङ्गम कर लेने पर पुनः नये-नये अमृतमय उपदेशोंको सुननेके लोभसे श्रीवास अङ्गनमें बाबाजी-के पास स्वतः खिंच जाते हैं।

चौदहवाँ अध्याय समाप्त

# पन्द्रहवाँ अध्याय

## प्रमेयके अन्तर्गत जीव तत्त्वका विचार

आज ब्रजनाथ और दिनोंसे पहले ही श्रीवास अङ्गनमें पहुँचे। सन्ध्या-आरती दर्शन करनेके लिये आज गोद्रुमके भक्तजन भी वहाँ पर शाम होनेके पहलेसे ही उपस्थित थे। श्रीप्रेमदास परमहंस-बाबाजी, वैष्णवदास और अद्वैतदास आदि सभी आरती-मण्डपमें बैठे थे। ब्रजनाथ गोद्रुमवासी वैष्णवोंके भावोंको देख कर ठगेसे रह गये। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'मैं भी जितनाजल्दी हो सकेगा, इनका सङ्ग लाभ कर जीवन सार्थक करूँगा।' ब्रजनाथकी सुनम्र और भक्तिमयी मूर्त्ति देखकर सबने उनको आशीर्वाद दिया। कुछ ही देरमें उन लोगोंकी दक्षिणकी ओर श्रीगोद्रुम यात्रा करने पर वृद्ध बाबाजीने ब्रजनाथके नेत्रोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा बहते देखा। रघुनाथदास बाबाजीको ब्रजनाथके प्रति अपूर्व स्नेह हो गया है। उन्होंने बड़े प्रेमसे पूछा—'बाबा! तुम क्यों रो रहे हो?'

ब्रजनाथने रोते रोते कहा—'प्रभो! आपके मधुर उपदेशोंका स्मरण कर मेरा चित्त विकल हो रहा है—सारा संसार जैसे सारहीन सा प्रतीत हो रहा है; श्रीगौराङ्गदेवके चरणोंमें आश्रय लेनेके लिये हृदय व्याकुल हो रहा है। आज आप कृपा कर यह बतलाईये कि 'मैं तत्त्वतः कौन हूँ और किस लिये मैं इस जगत् में आया हूँ?'

बाबाजी—'बेटा ! तुमने इस प्रश्नके द्वारा मुझे धन्य कर दिया । जिस दिन जीवका सौभाग्यसे शुभ दिन उदय होता है, वह सबसे पहले यही प्रश्न करता है । तुम दशमूलका पाँचवाँ श्लोक सुनो; तुम्हारा समस्त सन्देह दूर हो जायगा—

स्फूलिङ्गाः ऋद्धाग्नेरिव चिदणवे जीवनिचयाः ।
हरेः सूर्यस्यैवापृथगपि तु तद्भेद-विषयाः ॥
वशे माया यस्य प्रकृति-पतिरेवेश्वर इह ।
स जीवो मुक्तोऽपि प्रकृति-वशयोग्यः स्वगुणतः ॥
( ५ वाँ दशमूल )

जलती हुई अग्निसे जैसे अनेकों क्षुद्र चिनगारियाँ उड़ती हैं, ठीक उसी प्रकार चित्-सूर्य स्वरूप श्रीहरि के किरण-कणोंके समान चित् परमाणु स्वरूप अनन्त जीव हैं । श्रीहरिसे अभिन्न होते हुए भी ये जीव उनसे नित्य भिन्न हैं । ईश्वर और जीवमें नित्य भेद यह है कि ईश्वर मायाशक्ति अर्थात् प्रकृतिके अधीश्वर हैं और जीव मुक्त अवस्थामें भी अपने स्वभाव के अनुसार माया-प्रकृतिके अधीन होने योग्य होता है ।'

ब्रजनाथ—'अपूर्व सिद्धान्त है । इसके सम्बन्धमें वेद-प्रमाण जानना चाहता हूँ । यद्यपि प्रभु-वाक्य ही वेद हैं, तथापि उपनिषदों द्वारा इस सिद्धान्तका प्रतिपादन होनेसे लोग इसे प्रभुकी (महाप्रभुकी) वाणी स्वीकार करनेके लिये बाध्य होंगे ।'

बाबाजी—'वेदोंमें अनेक जगह इस तत्त्वका वर्णन पाया जाता है । मैं उनमेंसे दो एक मन्त्रोंको बतला रहा हूँ—

'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति ।
एवमेवास्मदात्मनः * * सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति ॥ (क)
( बृहदारण्यक २।१।२० )

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदञ्च परलोक स्थानञ्च । सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं । तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदञ्च परलोक-स्थानञ्च ।' (ख)
( बृहदारण्यक ४।३।९ )

इस मंत्रमें जीव शक्तिका तटस्थ-लक्षण बतलाया गया है । पुनः बृहदारण्यक ( ४।३।१८ ) में कहा गया है—

तद्यथा महामत्स्य उभे कूलेऽनुसञ्चरति
पूर्वञ्चापरञ्चैवमेवायं पुरुष एतावुभा—
वन्तावनुसञ्चरति स्वप्नान्तञ्च बुद्धान्तञ्च ॥ (ग)

ब्रजनाथ—' तटस्थ '-शब्दका वैदान्तिक अर्थ क्या है ?'

बाबाजी—'जल और भूमिके बीचके स्थानको 'तट' कहा जाता है । परन्तु जलसे लगा हुआ स्थान ही भूमि है । फिर 'तट' कहाँ रहा ? 'तट'—जल और भूमिके बीच दोनोंको विभक्त करने वाली रेखा विशेष है । यह तट रेखा स्थूल नेत्रोंसे दिखाई नहीं पड़ती । चित् जगत्को जल और मायिक जगत्को भूमि मान लेने पर दोनोंको विभक्त करने वाली सूक्ष्म रेखा ही 'तट' है । संध्य स्थान पर जीव-शक्ति की स्थिति है । सूर्यकी किरणोंमें जैसे अगणित परमाणु उड़ा करते है, उसी प्रकार भगवान्में जीवों की स्थिति है । जीव मध्यस्थानमें स्थित होकर एक

---

(क) जैसे अग्निसे अनेकों क्षुद्र चिनगारियाँ उड़ती है, उसी प्रकार समस्त आत्माओंके भी आत्मा स्वरूप श्रीकृष्णसे समस्त जीव उत्पन्न हुए है ।

(ख) उस जीव-पुरुषके दो स्थान है—यह जड़ जगत् और अनुसन्धेय चित् जगत् । जीव इन दोनोंके मध्य सन्ध्य स्थान रूप तृतीय स्वप्न-स्थानमें स्थित हैं । वे उस सन्ध्य स्थानमें स्थित होकर जड़ जगत् और चिद् जगत्—दोनों स्थानोंको देखता है ।

(ग) जिस प्रकार कोई बड़ा भारी मत्स्य नदीके पूर्व और अपर दोनों तीरों पर क्रमशः विचरण करता है, उसी प्रकार यह जीव पुरुष जड़ जगत् और चित् जगत्के मध्यवर्ती कारण-जलमें स्थित होकर इसके दोनों तीरों पर अर्थात् स्वप्नस्थान और जागरित स्थान इन दोनोंही स्थानोंमें क्रमशः विचरण करता है ।

तरफ चित् जगत्को और दूसरी तरफ माया-रचित ब्रह्माण्डको देखता है। भगवान्की चित् शक्ति एक ओर जैसे असीम है, दूसरी ओर माया शक्ति भी वैसे ही प्रकाण्ड है; इन दोनोंके बीचमें अनन्त सूक्ष्म जीव स्थित हैं। कृष्णकी तटस्थ-शक्तिसे जीव उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जीवोंका स्वभाव भी तटस्थ होता है।

ब्रजनाथ—'तटस्थ स्वभाव कैसा होता है ?'

बाबाजी—'जिसके द्वारा दोनों जगतोंके मध्य स्थित होकर दोनों तरफ देखा जा सके। दोनों शक्तियों के आधीन होनेकी योग्यताही 'तटस्थ स्वभाव' है। तट-जलसे कट कर नदी हो जाता है और पुनः नदीकी धारा बदल जानेसे भूमि खण्डके साथ एक होकर भूमि हो जाता है। जीव यदि कृष्णकी तरफ अर्थात् चित् जगत् की ओर देखता है, तब वह कृष्ण-शक्तिसे प्रभावित होकर चित् जगतमें प्रवेशकर शुद्ध चेतन आत्माके रूपमें भगवानकी सेवा करता है और यदि मायाके प्रति दृष्टि करता है, तब कृष्ण--विमुख होकर माया-जालमें आबद्ध हो पड़ता है। इस उभय-निष्ट स्वभाव का नाम ही 'तटस्थ-स्वभाव है।'

ब्रजनाथ—'क्या जीवके स्वरूपगत गठनमें कोई मायिक तत्त्व भी है ?'

बाबाजी—'नहीं, जीव चित् वस्तुसे ही रचित है। नितांत क्षुद्र स्वरूप होनेके कारण चिद् बलकी कमी होनेसे वह माया द्वारा पराजित अर्थात् आच्छादित किया जा सकता है। जीवोंकी सत्तामें मायाका गंध तक नहीं है।'

ब्रजनाथ—'मैंने अपने अध्यापकसे सुना था कि ब्रह्मका चित्खण्ड मायाद्वारा आवृत होकर जीव हुआ है। आकाश जैसे सदा महाकाश है अखण्ड है, परन्तु उसका कुछ अंश आवृत होर घटाकाश हो जाता है, उसी प्रकार जीव भी स्वरूपतः ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही मायासे आवृत होकर अपनेको जीव अभिमान करता है। यह विचार कैसा है ?'

बाबाजी—'यह विचार केवल मायावाद है। ब्रह्मवस्तुको माया कैसे स्पर्श कर सकती है ? ब्रह्मको यदि लुप्तशक्ति भी माना जाय, तब भी लुप्तशक्तिके साथ मायाका सान्निध्य कैसे संभव है ? जहाँ माया-शक्ति ही लुप्त है, वहाँ मायाकी क्रिया कैसे संभव हो सकती है ? अतः मायाके आवरणसे ब्रह्मकी ऐसी दुर्दशा कभी संभव नहीं। और यदि ब्रह्मकी पराशक्तिको जागरित रखते हो अर्थात् ब्रह्मकी पराशक्ति को स्वीकार किया जाता है, तब माया—जो अत्यन्त तुच्छ शक्ति है—किस प्रकारसे चित्शक्तिको पराजित करके ब्रह्मसे जीवकी सृष्टि कर सकती है ? ब्रह्म तो अखण्ड है; फिर ऐसे ब्रह्मका खण्ड ही कैसे किया जा सकता है ? ब्रह्मके ऊपर मायाकी क्रिया स्वीकार नहीं की जा सकती है। जीवोंकी सृष्टिमें मायाका कोई अधिकार या हाथ नहीं—जीव अणु होने पर भी मायासे परतत्त्व है।'

ब्रजनाथ—'एक समय एक अध्यापकने कहा था कि जीव और कुछ नहीं—ब्रह्मका ही प्रतिबिम्ब है। सूर्य जिस तरह जलमें प्रतिबिम्बित होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म भी मायामें प्रतिबिम्बित होकर जीव हुए हैं। यह विचार कैसा है ?'

बाबाजी—'यह भी मायावादका ही दूसरा नमूना है। ब्रह्मकी सीमा नहीं, असीम वस्तु कभी भी प्रतिबिम्बित नहीं हो सकती। ब्रह्मको सीमाविशिष्ट करना वेद विरुद्ध मत है; इसलिये 'प्रतिबिम्ब वाद' नितान्त हेय है।'

ब्रजनाथ—'और एक समय किसी दिग्विजयी सन्यासीने बतलाया था कि—'वास्तवमें जीव नामक कोई पदार्थ नहीं है, केवल भ्रमके कारण जीव बुद्धि होती है; भ्रम दूर होने पर एकमात्र अखण्ड ब्रह्म ही हैं। इस विचारमें कहाँ तक सत्यता है ?'

बाबाजी—'यह भी एक प्रकारका मायावाद है तथा सम्पूर्ण निराधार है। 'एकमेवाद्वितीयं' (छ० ६-२-१)—इस वेद-वाक्य द्वारा ब्रह्मके अतिरिक्त और रहता ही क्या है ? यदि ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तब यह भ्रम कहाँ से टपक पड़ा ? दूसरी बात यह भ्रम किसका है ? यदि कहो, ब्रह्मका भ्रम,

तब तो तुमने ब्रह्ममें भ्रम आदि दोषोंकी स्थिति बतलाकर ब्रह्मको ब्रह्म ही नहीं रखा। और यदि भ्रमको स्वतन्त्र रूपमें एक पृथक् तत्त्व माना जाता है, तब ब्रह्मके अद्वयत्वकी हानि होती है।'

ब्रजनाथ—'एक समय एक प्रकाण्ड ब्राह्मण-पण्डित नवद्वीप पधारे थे। उन्होंने एक पण्डित-सभामें यह विचार स्थापित किया था कि—केवल जीव ही हैं। वह स्वप्नमें सब कुछ सृष्टिकर उससे सुख-दुख भोगता है; स्वप्न दूर होने पर ब्रह्म-स्वरूप है।'—यह विचार कहाँ तक ठीक है?'

बाबाजी—यह भी मायावाद है। ब्रह्म अवस्थासे 'जीव अवस्था' और 'स्वप्न'—यह सब कैसे सम्भव हो सकता है। शुक्तिमें 'रजत-भ्रम' और रज्जुमें 'सर्प-भ्रम'—इन उदाहरणोंकी सहायतासे मायावादी कभी भी अद्वय ज्ञानका पक्ष मजबूत नहीं कर सकते। यह, सब तर्क जीवोंको मोहित करनेके लिये जाल-स्वरूप हैं।'

ब्रजनाथ—'जीवोंके स्वरूपमें मायाका कार्य नहीं है—इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा तथा जीवोंके स्वभाव पर मायाका प्रभाव पड़ सकता है—इसे भी मैं पूरी तरहसे समझ गया। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या चित्शक्तिने जीवको तटस्थ-स्वभाव देकर निर्माण किया है?'

बाबाजी—'नहीं; चित्शक्ति कृष्णकी परिपूर्ण-शक्ति है—वे जो कुछ उत्पन्न करती हैं, वह सब कुछ नित्य सिद्ध वस्तुएँ होती हैं। जीव नित्यसिद्ध नहीं है; वह साधनके द्वारा साधन-सिद्ध होकर नित्य-सिद्धके समान आनन्द भोग करता है। श्रीमतीजीकी चारों-प्रकारकी सखियाँ—नित्य-सिद्ध हैं तथा चिच्छक्ति स्वरूप श्रीमतीराधिकाकी काय-व्यूह हैं। समस्त जीव श्रीकृष्णकी 'जीव शक्ति' से प्रकाशित हुए हैं। जैसे चित्शक्ति कृष्णकी पूर्णशक्ति है, उसी प्रकार 'जीव-शक्ति कृष्णकी अपूर्ण शक्ति है। पूर्णशक्तिसे जिस तरह समस्त पूर्ण-तत्त्व रूपान्तरित हैं, अपूर्ण शक्तिसे भी उसी प्रकार अणु-चैतन्य-स्वरूप अनन्त जीव-समूह रूपान्तरित है। श्रीकृष्ण अपनी एक-एक शक्तिमें अधिष्ठित होकर उसके अनुरूप अपना स्वरूप प्रकाश करते हैं। चित्स्वरूपमें अधिष्ठित होकर वे कृष्ण और परव्योमनाथ नारायण स्वरूपका प्रकाश करते हैं; जीव-शक्तिमें अधिष्ठित होकर ब्रज अपनी विलास-मूर्तिरूप बलदेव-स्वरूपका प्रकाश करते हैं और माया शक्तिमें अधिष्ठित होकर कारणोदकशायी क्षीरोदक शायी और गर्भोदकशायी—इन तीन विष्णुस्वरूपोंका प्रकाश करते हैं। ब्रजमें अपने कृष्ण-स्वरूपसे सम्पूर्ण चिद् व्यापारको प्रकट करते हैं, बलदेव-स्वरूपमें शेष-तत्त्व होकर शेषी-तत्त्वस्वरूप कृष्णकी आठ प्रकारसे सेवा करनेके लिये नित्यमुक्त पार्षदजीवोंको प्रकट करते हैं। पुनः परव्योममें शेषरूप संकर्षण होकर शेषिरूप नारायणकी आठ प्रकारकी सेवाओंके लिये नित्यपार्षदस्वरूप आठ प्रकारके सेवक प्रकट करते हैं। संकर्षणके अवतार रूप महाविष्णु जीवशक्तिमें अधिष्ठित होकर परमात्म-स्वरूपमें जगत्गत जीवात्माओंको प्रकट करते हैं—ये सब जीव माया-प्रवण होते हैं। जबतक ये भगवान्की कृपासे चिच्छक्तिगत ह्लादिनी शक्तिका आश्रय नहीं पा लेते, तबतक उनकी मायाद्वारा पराजित होनेकी सम्भावना बनी रहती है। मायाबद्ध अनन्त जीव मायाद्वारा पराजित होकर मायाके त्रिगुणोंके अधीन हैं। अतएव, सिद्धान्त यह है कि जीव-शक्ति ही जीवको प्रकट करती है—चित्-शक्ति नहीं।' ( क्रमशः )